प्रेम के फूल
(150 letters)

अनुक्रम
1/ प्रेम के फूल..7
2/ प्रेम है परमात्मा...7
3/ प्रेम का मंदिर--निर्दोष, सरल हृदय...8
4/ प्रेम की सुवास...9
5/ प्रेम के आंसू..9
6/ प्रेम की पूर्णता में अहं-विसर्जित...10 7/ प्रेम--एक से सर्व की ओर...10 8/ प्रेम संगीत है, सौंदर्य है अतः धर्म है......................................11 9/ प्रेम की मिठास...12 10/ ढाई आखर प्रेम का..13 11/ प्यासी प्रतीक्षा--प्रेम की...13 12/ जीवन की अखंडता...14 13/ तैरें नहीं, बहें..15 14/ कूद पड़ो--शून्य में...16 15/ जीवनः जल पर खींची रेखा-सा..16 16/ प्रतीक्षा..17 17/ स्वयं डूब कर सत्य जाना जाता है..18 18/ योग-अनुसंधान...18 19/ नीति नहीं, योग-साधना...19 20/ प्रयोग करें, परिणाम की चिंता नहीं..19 21/ दर्शन का जागरण...20 22/ बूंद सागर है ही..20 23/ निद्रा में जागरण की विधिः जागृति में जागना............................21 24/ साधना में धैर्य...22 25/ साधना में धैर्य...22 26/ प्रेम की वर्षा...23 27/ जहां प्यास है वहां मार्ग भी है..24 28/ साधना के लिए श्रम और संकल्प...24 29/ प्रगाढ़ संकल्प..25 30/ शांति और अशांति सब हमारे सृजन हैं..25 31/ सेक्स-ऊर्जा का रूपांतरण..26 32/ स्वयं की कील..27 1

33/ वर्तमान में अशेष भाव से जीना...27 34/ प्रेम के स्वर..28 35/ अंतर्मिलन..28 36/ मौन अभिव्यक्ति..29 37/ प्रार्थना और प्रतीक्षापूर्ण समर्पण..30 38/ जीवन के अनंत रूपों का स्वागत...31 39/ जहां प्रेम है, वहीं प्रार्थना है..32 40/ अनंत प्रतीक्षा ही साधना है..33 41/ प्रार्थनापूर्ण प्रतीक्षा ही प्रेम है.....................................33 42/ मैं--एक स्वप्न--एक निद्रा...34 43/ अनलिखा पत्र...35 44/ चिंताओं का अतिक्रमण...36 45/ काम-वृत्ति पर ध्यान..37 46/ जीओ उन्मुक्त, पल-पल...38 47/ बिल्कुल ही टूट जा, मिट जा...38 48/ प्रभु की प्यास...39 49/ जीवन-दृष्टि...40 50/ जीवन निष्प्रयोजन है...41 51/ शून्य ही द्वार है, मार्ग है, मंजिल है.......................................42 52/ प्राणों की आतुरता...43 53/ युवक क्रांति दल...44 54/ जीवन है असुरक्षा--अव्यवस्था...45 55/ प्रेम के दो रूपः काम और करुणा..45 56/ सर्व स्वीकार है द्वार प्रभु का...46 57/ सोचना नहीं। देखना--बस देखना..47 58/ विरह, प्यास, पुकार और आंसू...48 59/ दस जीवन सूत्र..49 60/ सत्य को जीतने की कलाः सब भांति हार जाना...................................50 61/ मृत्यु का बोध..51 62/ अर्थ (उमंदपदह) की खोज..52 63/ जाग कर देखें--मैं है ही नहीं..53 64/ खोज--खोज--और खोज...53 65/ अंतर्वीणा..54 66/ सपनेः बंद व खुली आंखों के..54 67/ समाधान की खोज..55 68/ सत्य है सदा सूली पर...55

69/ अटूट संकल्प...56 70/ मुक्ति का संगीत...57 71/ प्रेम की आग..58 72/ विचारों की चरम सीमा..59 73/ खोजो मत--खाओ...60 74/ वाणी रहित, मांग रहित स्वयं का समर्पण.......................................61 75/ प्राणों के गीत।...61 76/ पहले खोजो प्रभु का राज्य...62 77/ जीवन को नृत्य बना..63 78/ जहां शिकायत नहीं है, वहीं प्रार्थना है....................................63 79/ आंखें खोलो और देखो..64 80/ समर्पण है द्वार...65 81/ जीवन में इतना दुख क्यों है?...65 82/ संदेह नहीं तो खोज कैसे होगी?...66 83/ मिटो ताकि हो सको..66 84/ प्रज्ञा पर ज्ञान की धूलि...67 85/ तैरें नहीं, डूबें..67 86/ आंखों का खुला होना ही द्वार है।..68 87/ सत्य की खोज..68 88/ प्रतिपल मर जाओ...69 89/ अभय आता है साधना से...69 90/ आस्तिकता--स्वीकार है, समर्पण है..70 91/ परमात्मा ही हमारी संपदा है..71 92/ मैं समस्त से एक हूं...71 93/ सत्य शब्दातीत है...72 94/ मनुष्य भी बीज है..73 95/ न दमन, न निषेध, वरन जागरण..73 96/ जिन खोया तिन पाइयां..74 97/ जीवन को ही निर्वाण बनाओ...75 98/ स्वप्नों से मुक्ति सत्य का द्वार है।......................................75 99/ स्वभाव में जीना साधना है।..76 100/ आत्मनिष्ठा..77 101/ अनंत आशा ही पाथेय है...78 102/ संकल्प के पीछे-पीछे आती है साधना..78 103/ अनासक्ति..79 104/ बस, परिवर्तन ही एक शाश्वतता है..80

105/ सहज निवृत्ति--प्रवृत्ति में जागने से....................................81 106/ ध्यान--अप्रयास, अनयास से..82 107/ साक्षी की आंखें...82 108/ अतः ज्योति...83 109/ स्वप्निल मूर्च्छा-ग्रंथि...83 110/ शून्य है द्वार प्रभु का...84 111/ योग साधना है सम्यक धर्म...85 112/ प्यास, प्रार्थना, प्रयास और प्रतीक्षा...................................85 113/ जीवन-शृंखला की समझ..86 114/ जीवन-संगीत...87 115/ छोड़ो स्वयं को और मिटो...87 116/ प्रेम--अनंतता है...88 117/ संकल्प और समर्पणरत साधना...89 118/ अंतस में छिपे खजाने की खुदाई...89 119/ अंतर्यात्रा--स्वयं में, सत्य में..90 120/ प्रेम के दिए..91 121/ प्रेम ही सेवा है..91 122/ प्रेम शून्य हृदय की दरिद्रता..92 123/ गागर में प्रेम का सागर...92 124/ प्रेम की संपदा...93 125/ परमात्मा है असीम प्रेम..93 126/ अंसुअन-जल सींचि-सींचि प्रेम-बेलि बोई....................................94 127/ प्रभु के लिए पागल हो...95 128/ समय न खोओ..95 129/ द्वैत का अतिक्रमण--साक्षीभाव से...96 130/ जो मिले अभिनय उसे पूरा कर..96 131/ ध्यान है भीतर झांकना..97 132/ समर्पण और साक्षी...98 133/ जो घर बारे आपना..99 134/ नास्तिकता में और गहरे उतरें..99 135/ विचारों के पतझड़...100 136/ समर्पण--एक अनसोची छलांग...101 137/ परमात्मा है--अभी और यहीं..102 138/ नेति-नेति... की साधना...102 139/ स्वयं को पूर्णतया शून्य कर ले...104 140/ संघर्ष, संकल्प और संन्यास...104

141/ स्वयं को जन्म देने की प्रसव-पीड़ा..105 142/ अनंत की यात्रा पर निकलो...106 143/ शक्ति स्वयं के भीतर है...106 144/ मिट और जान... खो और पा...107 145/ श्वास-श्वास में प्रेम हो...108 146/ संन्यास जीवन का परम भोग है--..108 147/ संन्यास नया जन्म है।..109 148/ संसार में संन्यास का प्रवेश..110 149/ संन्यासी बेटे का गौरव..110 150/ संन्यास की आत्मा हैः अडिग, अचल और अभय होना..........................111

1/ प्रेम के फूल

प्रिय सोहन,
प्रेम। तेरा पत्र मिला।
कविता से तो हृदय फूल गया।
सुना था प्रेम से काव्य का जन्म होता है,
तेरे पत्र में उसे साकार देख लिया।
प्रेम हो तो धीरे-धीरे पूरा जीवन ही काव्य हो जाता है।
जीवन सौंदर्य के फूल प्रेम की धूप में ही खिलते हैं।
यह भी तूने खूब पूछा है कि मेरे हृदय में तेरे लिए प्रेम क्यों हैं? क्या प्रेम के लिए भी कोई कारण होते हैं?
और यदि किसी कारण से प्रेम हो तो क्या हम उसे प्रेम कहेंगे?
पागल, प्रेम तो सदा ही अकारण होता है।
यही उसका रहस्य और उसकी पवित्रता है।
अकारण होने के कारण ही प्रेम दिव्य है और प्रभु के लोक का है।
फिर, मैं तो उसी भांति प्रेम से भरा हूं, जैसे दीपक में प्रकाश होता है।
पर उस प्रकाश के अनुभव के लिए आंखें चाहिए।
तेरे पास आंख थीं तो तूने उस प्रकाश को पहचाना।
इसमें मेरी नहीं, तेरी ही विशेषता है।

वहां सबको मेरे प्रणाम कहना।
माणिक बाबू और बच्चों को प्रेम।

रजनीश के प्रणाम
12-3-1965

प्रतिः सुश्री सोहन बाफना, पूना

2/ प्रेम है परमात्मा

प्रिय बहन,
प्रेम। तुम्हारा पत्र मिला है।
आनंद में जान कर आनंदित होता हूं।
मेरे जीवन का आनंद यही है।
सब आनंद से भरें, श्वास-श्वास में यही प्रार्थना अनुभव करता हूं।
इसे ही मैंने धर्म जाना है।
वह धर्म मृत है, जो मंदिरों और पूजागृहों में समाप्त हो जाता है।
उस धर्म की कोई सार्थकता नहीं है, जिसका आदर निष्प्राण शब्दों और सिद्धांतों के ऊपर नहीं उठ पाता है।
वास्तविक और जीवित धर्म वही है, जो समस्त से जोड़ता और समस्त तक पहुंचता है।
विश्व के प्राणों में जो एक कर दे, वही धर्म है।
और, वे भावनाएं प्रार्थना हैं, जो उस अदभुत संगम और मिलन की और ले चलती हैं।
और, वे समस्त प्राथनाएं एक ही शब्द में प्रकट हो जाती हैं।
वह शब्द प्रेम है।
प्रेम क्या चाहता है?
जो आनंद मुझे मिला है, प्रेम उसे सबको बांटना चाहता है।
प्रेम स्वयं को बांटना चाहता है।
स्वयं को बेशर्त दे देना प्रेम है।

6

बूंद जैसे स्वयं को सागर में विलीन कर देती है, वैसे ही समस्त के सागर में अपनी सत्ता को समर्पित कर देना प्रेम है।

और, वही प्रार्थना है।

ऐसे ही प्रेम से आंदोलित हो रहा हूं।

उसके संस्पर्श ने जीवन अमृत और आलोक बना दिया है।

अब एक ही कामना है कि जो मुझे हुआ है, वह सब को हो सके।

वहां सबको मेरा प्रेम संदेश कहें। 11 फरवरी तो कल्याण मिल रही हो न?

रजनीश के प्रणाम
3 फरवरी, 1965

प्रतिः सुश्री सोहन बाफना, पूना

3/ प्रेम का मंदिर --निर्दोष, सरल हृदय

सोहन,

प्रिय, तेरा पत्र मिला है। और, चित्र भी। उसे देखता हूं--तू कितनी सरल और निर्दोष हो रही है? पूजा और प्रेम का वैसा पवित्र भाव उसमें प्रकट हुआ है? हृदय प्रेम से पवित्र हो जाता है और मंदिर बन जाता है। इसे तेरे चित्र में प्रत्यक्ष ही देख रहा हूं। प्रभु इस निर्दोष सरलता को निरंतर बढ़ाता चले यही मेरी प्रार्थना है।

2000 वर्ष पहले क्राइस्ट से किसीने पूछा थाः प्रभु के राज्य में प्रवेश के अधिकारी कौन होंगे उन्होंने एक बालक की ओर इशारा करके कहा थाः जिनके हृदय बालकों की भांति सरल हैं।

और, आज तेरे चित्र को देखते-देखते मुझे यह घटना अनायास ही याद हो गई है।

माणिक बाबू को प्रेम। बच्चों को आशीष।

रजनीश के प्रणाम
9-6-1965 (दोपहर)

प्रतिः सुश्री सोहन बाफना, पूना

4/ प्रेम की सुवास

प्यारी सोहन,

सुबह ही तेरा पत्र मिला। तू जिन प्रेम फूलों की माला गूंथती है, उनकी सुगंध मुझ तक आ जाती है। और तू जो प्रीति बेल बो रही है, उसका अंकुरण मैं अपने ही हृदय में अनुभव करता हूं। तेरे प्रेम और आनंद से पैदा हुए आंसू मेरी आंखों की शक्ति और चमक बन जाते हैं। और यह कितना आनंदपूर्ण है!

19 जून को कल्याण पर तेरी प्रतीक्षा करूंगा।

रजनीश के प्रणाम
14-6-1965 (दोपहर)

प्रतिः सुश्री सोहन बाफना, पूना

5/ प्रेम के आंसू

प्रिय सोहन,
स्नेह। अभी अभी यहां पहुंचा हूं। गाड़ी 5 घंटे विलंब से पहुंची है। तुमने चाहा था कि पहुंचते ही पत्र लिखूं इसलिए सब से पहले वही कर रहा हूं। रास्ते भर तुम्हारा स्मरण बना रहा, और तुम्हारी आंखों से ढलते आंसू दिखाई पड़ते रहे। आनंद और प्रेम के आंसुओं से पवित्र इस धरा पर और कुछ नहीं है। ऐसे आंसू कितने अपार्थिव होते हैं, और कितने पारदर्शी? वे निश्चय ही शरीर के हिस्से होते हैं, पर उनसे जो प्रकट होता है, वह शरीर का नहीं होता है।
मैं तुम्हारे इन आंसुओं के लिए क्या दूं?
माणिक बाबू को मेरा हार्दिक प्रेम कहना। अनिल और बच्चों को स्नेह।

रजनीश के प्रणाम
17-2-1965 (संध्या)

प्रतिः सुश्री सोहन बाफना, पूना

6/ प्रेम की पूर्णता में अहं-विसर्जित

प्रिय सोहन,
प्रेम। बहुत प्रेम। प्रवास से लौटा, तो पत्रों के ढेर में तेरे पत्र
को खोजा। तेरे अपने हाथ से लिखे उस पत्र को पाकर कितना आनंद हुआ--कैसे कहूं?
तूने लिखा हैः अब तो अनुपस्थिति में उपस्थिति प्रतीत हो रही है। प्रेम ही वस्तुतः उपस्थिति है। प्रेम हो तो समय और स्थान की दूरियां मिट जाती हैं और प्रेम न हो तो समय और स्थान में निकट होकर भी बीच में अलंध्य और अनंत फालसा होता है। अप्रेम एकमात्र दूरी है, और प्रेम एकमात्र निकटता है। जो समस्त के प्रेम को उपलब्ध होते हैं, वे सब को अपने भीतर ही पाने लगते हैं। विश्व तब बाहर नहीं, भीतर मालूम होता है और चांद-तारे अंतस के आकाश में दिखाई पड़ने लगते हैं। प्रेम की उस पूर्णता में अहं लुप्त हो जाता है। प्रभु उस पूर्णता की और ले चले यही सदा मेरी कामना है।
माणिक बाबू को प्रेम। अनिल और बच्चों को स्नेह।

रजनीश के प्रणाम
3 मार्च 1965 (रात्रि)

प्रतिः सुश्री सोहन बाफना, पूना।

7/ प्रेम--एक से सर्व की ओर

प्यारी सोहन,
मैं कल यहां आ गया। आते ही सोचता रहा, पर अब लिख पा रहा हूं। देर के लिए क्षमा करना। एक दिन की देर भी कोई थोड़ी देर तो नहीं है।
वापसी यात्रा के लिए क्या कहूं? बहुत आनंदपूर्ण हुई। पूरे समय सोया रहा और तू साथ बनी रही। यूं तुझे पीछे छोड़ आया था--पर नहीं, तू साथ ही थी। और, ऐसा साथ ही साथ है, जो कि छोड़ा नहीं जा सकता है। शरीर की निकटता निकट होकर भी निकट नहीं है। उस तल पर कभी कोई मिलन नहीं होता--वहां बीच में अलंध्य खाई है। पर एक और निकटता भी है जो कि शरीर की नहीं है। उस निकटता का नाम ही प्रेम है। उसे पाकर फिर खोया नहीं जा सकता है और तब दृश्य जगत में अनंत दूरी होने पर भी अदृश्य में कोई दूरी नहीं होती है।

यह अ-दूरी यदि एक से भी सध जावें तो फिर सबसे सध जाती है। एक तो द्वार
ही है। साध्य तो सर्व है। प्रेम का प्रारंभ एक है; अंत सर्व है। वही प्रेम जो सर्व संबोधित हो जाता है और जिसकी निकटता के बाहर कुछ भी शेष नहीं बचता है--उसे ही मैं धर्म कहता हूं। जो प्रेम कहीं भी रुक जाता है, वही अधर्म बन जाता है।
माणिक बाबू को प्रेम।

रजनीश के प्रणाम
17 अप्रैल 1965

प्रतिः सुश्री सोहन, पूना

8/ प्रेम संगीत है, सौंदर्य है अतः धर्म है

प्रिय सोहन बाई,
स्नेह। तुम्हारा पत्र मिला है।
उन शब्दों से मुझे बहुत खुशी होती है
छोटे छोटे फूल जैसे अनंत सौंदर्य को प्रकट कर देते हैं, वैसे ही हृदय
की पूर्णता और गहराई से निकले हुए शब्द भी अनंत और विराट को प्रतिध्वनित करते हैं।
प्रेम शब्दों में प्राण डाल देता है और उन्हें जीवन दे देता है।
फिर क्या कहा जा रहा है, वह नहीं, वरन क्या कहना चाहा था, वह अभिव्यक्त
हो जाता है।
प्रत्येक के भीतर कवि है और प्रत्येक के भीतर काव्य है,
पर हम गहराइयों में जाते हैं, वे एक अलौकिक प्रेम को अपने भीतर जागता हुआ अनुभव करते हैं।
और वह प्रेम उनके समग्र जीवन को सौंदर्य, शांति, संगति और काव्य से भर देता है।
उनका जीवन ही संगीत हो जाता है।
और उसी संगीत की भूमिका में सत्य का अवतरण होता है।
सत्य के अवतरण के लिए संगीत आधार है।
जीवन को संगीत बनाना आवश्यक है।
उसके माध्यम से ही कोई सत्य के निकट पहुंचता है।
तुम्हें भी संगीत बनना है।
सारे जीवन को--छोटे-छोटे कामों को भी संगीत बनाओ।
प्रेम से यह होता है।
जो है, उसे प्रेम करो।
सारे जगत के प्रति प्रेम अनुभव करो।
अपनी श्वास-श्वास में समस्त के प्रति प्रेम की भावना से ही स्वयं में संगीत उत्पन्न होता है।
क्या यह कभी देखा है?
उसे देखो--प्रेम से अपने को भर लो और देखो।
वही अधर्म है--वही केवल पाप है जो स्वयं में संगीत को तोड़ देता है। और वही धर्म है--वही केवल धर्म है जो स्वयं को संगीत से भरता है।
प्रेम धर्म है क्योंकि प्रेम संगीत है और सौंदर्य है।
प्रेम परमात्मा है क्योंकि वही उसे पाने की पात्रता है।
वहां सब को मेरा प्रेम कहें।
और अपने निकट भी मेरे प्रेम के प्रकाश को अनुभव करें।

रजनीश के प्रणाम
5 दिसंबर 1964

9

9/ प्रेम की मिठास

प्रिय सोहन,

स्नेह। मैं बाहर से लौटा तो तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा थी। पत्र और अंगूर साथ ही मिले। पत्र जो कि वैसे ही इतना मीठा था, और भी मीठा हो गया!

मैं आनंद में हूं। तुम्हारा प्रेम उस आनंद को और बढ़ा देता है। सबका प्रेम उस आनंद को अनंत गुणा कर रहा है। एक ही शरीर कितना आनंद है, पर जिसे सब शरीर अपने ही लग रहे हों, उसके साथ सिवाय ईर्ष्या करने के और क्या उपाय है?

ईश्वर करे तुम्हें मुझसे ईर्ष्या हो--सबको हो, मेरी तो कामना सदा यही है।

माणिक बाबू ने भी बहुत प्रीतिकर शब्द लिखे हैं। उन्हें मेरा प्रेम कहना। बच्चों को भी बहुत बहुत प्रेम।

रजनीश के प्रणाम
16 मार्च 1965

प्रतिः सुश्री सोहन बाफना, पूना

10/ ढाई आखर प्रेम का...

प्रिय सोहन,

तू इतने प्यारे पत्र लिखेगी, यह कभी सोचा भी नहीं था!
और ऊपर से लिखती है कि मैं अपढ़ हूं!
प्रेम से बड़ा कोई ज्ञान नहीं है--
और जिनके पास प्रेम न हो, वे अभागे ही केवल अपढ़ हो सकते हैं।
जीवन में असली बात बुद्धि नहीं, हृदय है--
क्योंकि, आनंद और आलोक के फूल बुद्धि से नहीं, हृदय से ही उत्पन्न होते हैं।
और, वह हृदय तेरे पास है और बहुत है।
क्या मेरी गवाही से बड़ी गवाही भी तू खोज सकती है?
यह तूने क्या लिखा है कि मुझसे कोई भूल हुई हो तो मैं लिखूं?
प्रेम ने आज तक जमीन पर कभी कोई भूल नहीं की है।
सब भूलें अ-प्रेम में होती हैं।
मेरे देखे तो जीवन में प्रेम का अभाव ही एकमात्र भूल है।
वह जो मैंने लिखा था कि प्रभु मेरे प्रति ईर्ष्या पैदा करे, वह किसी भूल के कारण नहीं; वरन--
जो अनंत आनंद मेरे हृदय में फलित हुआ है उसे पाने की प्यास तेरे भीतर भी गहरी से गहरी हो, इसलिए।
मेवलडी रानी! उसमें तेरे चिंतित होने का कोई कारण नहीं था।
माणिक बाबू को मेरा प्रेम। बच्चों को स्नेह।

रजनीश के प्रणाम
22 मार्च 1965 (रात्रि)

प्रतिः सुश्री सोहन बाफना, पूना

11/ प्यासी प्रतीक्षा--प्रेम की

प्रिय सोहन,
पत्र मिला है। मैं तो जिस दिन से आया हूं, उसी दिन से प्रतीक्षा करता था। पर, प्रतीक्षा भी कितनी मीठी होती है!
जीवन स्वयं ही एक प्रतीक्षा है।
बीज अंकुरित होने की प्रतीक्षा करते हैं और सरिताएं सागर होने की। मनुष्य किसकी प्रतीक्षा करता है? वह भी तो किसी वृक्ष के लिए बीज है और किसी सागर के लिए सरिता है!
कोई भी जब स्वयं के भीतर झांकता है, तो पाता है कि किसी असीम और अनंत में पहुंचने की प्यास ही उसकी आत्मा है।
और, जो इस आत्मा, को पहचानता है, उसके चरण परमात्मा की दिशा में उठने प्रारंभ हो जाते हैं; क्योंकि प्यास का बोध आ जावें और हम जल स्रोत की ओर न चलें, यह कैसे संभव है?
यह कभी नहीं हुआ है और न ही कभी होगा। जहां प्यास है, वहां प्राप्ति की तलाश भी है।
मैं इस प्यास के प्रति ही प्रत्येक को जगाना चाहता हूं, और प्रत्येक
के जीवन को प्रतीक्षा में बदलना चाहता हूं।
प्रभु की प्रतीक्षा में परिणत हो गया जीवन ही सद जीवन है। जीवन के शेष
सब उपयोग उपव्यय हैं और अनर्थ हैं।
माणिक बाबू को प्रेम।

रजनीश के प्रणाम
24-4-65 (दोपहर)

(प्रतिः सुश्री सोहन, पूना)

12/ जीवन की अखंडता

मेरे प्रिय,
प्रेम। आपका प्रेमपूर्ण पत्र पाकर अत्यंत अनुगृहीत हूं।
लेकिन, जीवन को मैं अखंड मानता हूं।
और उसे खंड खंड तोड़ कर देखने में असमर्थ हूं।
वह अखंड है ही।
और चूंकि आज तक उसे खंड खंड करके देखा गया है, इसलिए वह विकृत हो गया है।
न राजनीति है, न नीति है, न धर्म है।
है जीवन।
है परमात्मा।
समग्र और अखंड।
उसे उसके सब रूपों में ही पहचानना, खोजना और जीना है।
इसलिए मैं जीवन के समय पहलुओं पर बोलना जारी रखूंगा।
और अभी तो सिर्फ शुरुआत है।
पत्रकारों को उत्तर देना तो सिर्फ भूमिका तैयार करनी है।
लेकिन सब पहलुओं से उसकी यात्रा करनी है।
सब मार्गों से उसकी ओर ही चलना है।
शायद इस सत्य को समझने में मित्रों को थोड़ी देर लगेगी।
वैसे सत्य को समझने में थोड़े देर लगना अनिवार्य ही है।
लेकिन जो सत्य के खोजी हैं वे भयभीत नहीं होंगे।
सत्य की खोज में अभय तो पहली शर्त है।
और यह भी ध्यान में रहे कि अध्यात्म जब तक समग्र जीवन का दर्शन नहीं बनता है तब तक वह नपुंसक ही सिद्ध होता, और उसकी आड़ में सिर्फ पलायनवादी ही शरण पाते हैं।
अध्यात्म को बनाना है शक्ति।

अध्यात्म को बनाना है क्रांति।
और तभी अध्यात्म को बचाया जा सकता है।
वहां सबको मेरा प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम
27-3-69

(प्रतिः सर्व श्री एम. टी. कामदार, सुरेश बी. जोशी, नानुभाई और श्री कारेलिया, भावनगर (गुजरात)

(ओशो ने जब जीवन के विविध पहलुओं पर बोलना शुरू किया, तो भावनगर के कुछ मित्रों ने निवेदन किया कि आप तो सिर्फ धर्म और अध्यात्म पर ही बोलें, तत्संबंध में ओशो द्वारा उपरोक्त उत्तर दिया गया।)

13/ तैरें नहीं, बहें

मेरे प्रिय,
प्रेम। पत्र मिला है। मैं तो सदा साथ हूं। न चिंतित हों, न उदास। साधना को भी परमात्मा के हाथों में छोड़ दें। जो उसकी मर्जी।
स्वयं तो जो जावें--एक सूखे पत्ते की भांति। फिर हवाएं चाहे जहां ले जावें।
क्या यही शून्य का अर्थ नहीं है?
तैरें, नहीं, बहें।
क्या यही शून्य का अर्थ नहीं है?
वहां सबको मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
10-9-1968

(प्रतिः श्री ओम प्रकाश अग्रवाल, जालंधर, पंजाब)

14/ कूद पड़ो--शून्य में

प्रभात
18-6-1968

मेरे प्रिय,
प्रेम। तुम्हारा पत्र पाकर आनंदित हूं।
सत्य अज्ञात है और इसलिए उसे पाने के लिए ज्ञात को छोड़ना ही पड़ता है।
ज्ञात (ज्ञदवूद) के तट से मुक्त होते ही अज्ञात। (न्नदादवूद) के सागर में प्रवेश हो जाता है।
साहस करो और कुछ पड़ो।
शून्य में--महाशून्य में।
क्योंकि वहीं प्रभु का आवास है।
सबको प्रेम।
या कि एक को ही।
आह! वही एक तो है।
बस वही है।
सब में भी वही है।
सर्व में भी। और शून्य में भी।

रजनीश के प्रणाम

(प्रतिः श्री ओमप्रकाश अग्रवाल , जालंधर , पंजाब)

15/ जीवनः जल पर खींची रेखा -सा

मेरे प्रिय ,
प्रेम। आपका पत्र मिला है।
जन्म -समय की खोज-खबर करनी पड़ेगी।
दिन शायद 11 दिसंबर है। लेकिन यह भी पक्का नहीं।
लेकिन ज्योतिषी मित्र को कहेंः क्यों परेशान होते हैं ?
भविष्य आ ही जाएगा , इसलिए उसकी ऐसी चिंता नहीं करनी चाहिए।
फिर कुछ भी क्यों न हो --अंततः सब बराबर है।
धूल धूल में वापस लौट जाती है।
और जीवन जल पर खींची रेखाओं सा विलीन हो जाता है।
वहां सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम
12-12-1968

(ऊपर एक पत्र प्रस्तुत है ओशो का जो श्री अनूप बाबू , सुरेंद्रनगर को लिखा गया है। श्री अनूप बाबू ने आचार्य श्री से आचार्य श्री की जन्म तारीख और समय बताने का आग्रह किया था किसी ज्योतिषी मित्र के परामर्श से --उसी संदर्भ का है यह पत्र।)

16/ प्रतीक्षा

प्यारी जया ,
प्रेम। तेरा पत्र मिला है।
तेरे प्राणों की प्यास को , मैं भलीभांति जानता हूं। और वह क्षण भी दूर नहीं है , जब वह तृप्त हो सकेगी।
तू बिल्कुल सरोवर के किनारे ही खड़ी है।
केवल आंख ही भर खोलनी है।
और मैं देख रहा हूं कि पलकें खुलने के लिए तैयारी भी कर रही है। फिर मैं साथ हूं --सदा साथ हूं --इसलिए जरा भी चिंता मत कर।
धैर्य रख और प्रतीक्षा कर।
बीज अपने अनुकूल समय पर ही टूटता है और अंकुरित होता है।
वहां सबको मेरे प्रणाम कहना। शेष मिलने पर।

रजनीश के प्रणाम
प्रभात 19-9-1968

(प्रतिः श्रीमती जयवंती शुक्ल , जूनागढ़ , गुजरात)

17/ स्वयं डूब कर सत्य जाना जाता है

प्रिय आत्मन् ,

आपका पत्र मिल गया था। कुछ लिखने के लिए आपका कितना प्रेमपूर्ण आग्रह है! और मैं हूं कि अतल मौन में डूब गया हूं। बोलता हूं; काम करता हूं; पर भीतर है कि सतत एक शून्य घिरा हुआ है। वहां तो कोई गति भी नहीं है। इस भांति एक ही साथ दो जिन जीता हुआ मालूम होता है। कैसा अभिनय है?
पर शायद पूरा जीवन ही अभिनय है। और यह बोध एक अदभुत मुक्ति का द्वार खोल रहा है। वह जो क्रिया के बीच अक्रिया है--गति के बीच गति शून्य है-- परिवर्तन के बीच नित्य है--वही है सत्य; वही है सत्ता। वास्तविक जीवन इस नित्य में ही है। उसके बाहर केवल स्वप्नों का प्रवाह है।
सच ही, बाहर केवल स्वप्न हैं। उन्हें छोड़ने, न छोड़ने का प्रश्न नहीं-- केवल उसके प्रति जागना ही पर्याप्त है। और जागते ही सब परिवर्तित हो जाता है। वह दीखता है जो देख रहा है। और केंद्र बदल जाता है। प्रकृति से पुरुष पर पहुंचना हो जाता है। यह पहुंच क्या दे जाती है? कहा नहीं जा सकता है। कभी कहा नहीं गया। कभी कहा भी नहीं जाएगा। स्वयं जाने बिना जानने का और कोई मार्ग नहीं है। स्वयं पर कर मृत्यु जानी जाती है। स्वयं डूब कर सत्य जाना जाता है। प्रभु सत्य मग डुबाये यही कामना है।

रजनीश के प्रणाम
13 अगस्त, 1962 प्रभात

(प्रतिः लाला श्री सुंदरलाल, बंगलों रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-7)

18/ योग-अनुसंधान

प्रिय आत्मन्,
प्रणाम। आपका पत्र पढ़ कर अत्यंत प्रसन्नता हुई। मैं अभी तो कुछ भी नहीं लिखा हूं। एक ध्यान केंद्र जरूर यहां बनाया है, जिसमें कुछ साथी प्रयोग कर रहे हैं। इन प्रयोगों से उपलब्ध नतीजों से परिपूर्ण रूप से सुनिश्चित हो जाने पर अवश्य ही कुछ लिखने की संभावना है। मैं अपने स्वयं के प्रयोगों पर निश्चित निष्कर्षों पर पहुंचा हूं। पर उनकी अन्यों के लिए उपयोगिता को भी परख लेना चाहता हूं।
मैं शास्त्रीय ढंग से कुछ भी लिखना नहीं चाहता--मेरी दृष्टि वैज्ञानिक है। मनोवैज्ञानिक और परा मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर योग के विषय में कुछ कहने का विचार है। इस संबंध में बहुत ही भ्रांत धारणाएं देख रहा हूं। इस कार्य में मेरी दृष्टि में कोई संप्रदाय या पक्ष का अनुमोदन भी नहीं है। इस और कभी आवे तो बहुत सी चर्चा हो सकती है।

रजनीश के प्रणाम
1 अक्तूबर 1962

(प्रतिः लाला सुंदरलाल, दिल्ली)

19/ नीति नहीं, योग-साधना

प्रिय, आत्मन्,
प्रणाम। मैं अभी अभी राज नगर (राजस्थान) लौटा हूं। वहां आचार्य श्री तुलसी के मर्यादा महोत्सव में आमंत्रित था। कोई कोई 400 साधु-साध्वियों को ध्यान-योग के सामूहिक प्रयोग से परिचित कराया है। अदभुत परिणाम हुए हैं।
मेरा देखना है कि ध्यान समग्र धर्म साधना का केंद्रीय तत्व है और शेष, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि उसके परिणाम हैं। ध्यान की पूर्णता--

समाधि--उपलब्ध होने से वे अपने आप चले आते हैं। उनका विकास सहज ही हो जाता है। इस मूल साधना को भूल जाने से हमारा सब प्रयास बाह्य और सतही होकर रह जाता है। धर्म साधना कोरी नैतिक साधना नहीं है; वह मूलतः योग साधना है। केवल नीति नकारात्मक है और नकार पर कोई स्थायी भिति खड़ी नहीं है। योग विधायक है और इसलिए वह आधार है। मैं इस विधायक आधार को सब तक पहुंचा देना चाहता हूं।

रजनीश के प्रणाम
12 फरवरी 1963 रात्रि।

(प्रतिः लाला सुंदरलाल, दिल्ली)

20/ प्रयोग करें, परिणाम की चिंता नहीं

प्रिय आत्मन्,
प्रणाम। पूरी मई बाहर रहने से स्वास्थ्य पर कुछ बुरा असर हुआ। इसलिए जून में आयोजित बंबई, कलकत्ता और जयपुर के सारे कार्यक्रम स्थगित कर दिए हैं।
समाधि योग पर आप प्रयोग कर रहे है यह जान कर प्रसन्नता हुई। परिणाम की नहीं, प्रयोग की चिंता करें; परिणाम तो एक दिन आ ही जाता है, वह अनुक्रम से नहीं, अनायास से आता है, ज्ञात भी नहीं पड़ता है, और उसका आगमन हो जाता है और एक क्षण में जीवन कुछ से कुछ हो जाता है।

भगवान महावीर पर अभी नहीं लिखा रहा हूं। लिखने के प्रति मुझसे कोई प्रेरणा ही नहीं है। आपकी जबरदस्ती से कुछ हो सके तो बात दूसरी है।
शेष शुभ।

रजनीश के प्रणाम
3 जून 1963

(प्रतिः लाल सुंदरलाल, दिल्ली)

21/ दर्शन का जागरण

चिदात्मन्,
आपके पत्र मले। मैं बाहर था। अतः शीघ्र प्रत्युत्तर संभव नहीं हो सका। अभी अभी लौटा हूं, राणकपुर में शिविर लिया था, वह शिविर केवल राजस्थान के मित्रों के लिए था। इस लिए आपको सूचित नहीं किया था। पांच दिन का शिविर था, और कोई 60 शिविरार्थी थे--शिविर अभूतपूर्व रूप से सफल रहा है और परिणाम दिखाई पड़े हैं। उन परिणामों से संयोंजक मित्रों का साहस बढ़ा है, और वे जल्दी ही अखिल भारतीय स्तर पर एक शिविर आयोजित करने का विचार कर रहे हैं। उसमें आपको आना ही है।
यह जानकर अति आनंदित हूं कि ध्यान पर आपका कार्य चल रहा है, केवल मौन होना है। बस मौन हो जाना ही सब कुछ है। मौन का अर्थ वाणी के अभाव से ही नहीं--मौन का अर्थ है, विचार का अभाव। चित्त जब निस्तरंग होता है, तो अनंत से संबंधित हो जाता है।
शांत बैठ कर विचार प्रवाह को देखते रहें--कुछ करें नहीं; केवल देखें,
वह केवल देखना ही विचारों को विसर्जित कर देता है। दर्शन का जागरण विचार-विकार से मुक्ति है। और जब विचार नहीं होते हैं तो चैतन्य का आविर्भाव होता है। यही समाधि है।

रजनीश के प्रणाम
17 जून 1964
प्रतिः लाला सुंदरलाल, दिल्ली

22/ बूंद सागर है ही

मेरे प्रिय,
प्रेम। पत्र पाकर आनंदित हूं।
बूंद को सागर बनना नहीं है।
यही उसे जानना है।
जो है--जैसा है--उसे वही और वैसा ही जानना सत्य है।
सत्य मुक्तिदायी है।
जयश्री को प्रेम, और सबको भी।

रजनीश के प्रणाम
24-4-1969

(प्रतिः श्री पुष्कर गोकाणी, द्वारका, गुजरात)

(श्री पुष्कर भाई गोकाणी ने यह जानना चाहा था कि क्या बूंद का सागर में खो जाना, एक व्यक्ति की अपनी निजता टदकपअपकनंसपजल को खो देने जैसा नहीं है? ऐसा मन को प्रेरक नहीं है।)

23/ निद्रा में जागरण की विधिः जागृति में जागना

मेरे प्रिय,
प्रेम।
जागृति में ही जागे।
निद्रा या स्वप्न में जागने का प्रयास न करें।
जागृति में जागने के परिणाम स्वरूप ही अनायास निद्रा या स्वप्न में
भी जागरण उपलब्ध होता है।
लेकिन उसके लिए करना कुछ भी नहीं है,
कुछ करने से उसमें बाधाएं ही पैदा हो सकती हैं,
निद्रा तो जागरण का ही प्रतिफल है।
जो हम जागते में हैं, वही हम सोते में हैं।
यदि हम जागते में ही सोए हुए हैं, तो ही निद्रा भी निद्रा है।
जागते में विचारों का प्रवाह हो सोते में स्वप्नों का जाल है।
जागने में जागते ही निद्रा में भी जागरण का प्रतिफलन शुरू हो जाता है।
जागते में विचार नहीं तो फिर सोते में स्वप्न भी मिट जाते हैं।
शेष शुभ।
वहां सबको प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
9-9-69
(प्रतिः श्री घनश्यामदास, जनमेजय, ग्वालियर (म. प्र.)

24/ साधना में धैर्य

प्रिय आत्मन्,
स्नेह। तुम्हारे पत्र को राह में पढ़ा, उसने मेरे हृदय को छू लिया है। जीवन सत्य को जानने की तुम्हारी आकांक्षा प्रबल हो तो जो अभी प्यास है वही एक दिन प्राप्ति बन जाती है। केवल एक जलती हुई अभीप्सा चाहिए। और कुछ भी आवश्यक नहीं है। नदियां जैसे सागर को खोज लेती हैं वैसे ही मनुष्य भी चाहना करे तो सत्य को पा लेता है। कोई पर्वत, कोई चोटियां बाधा नहीं बनती है वरन उनकी चुनौती सुप्त पुरुषार्थ को जगा देती है।
सत्य प्रत्येक के भीतर है। नदियों को तो सागर खोजना पड़ता है। हमारा सागर तो हमारे भीतर है। और फिर भी जो उसके प्यासे और उससे वंचित रह जाएं, उन पर सिवाय आश्चर्य के और क्या करना होगा? वस्तुतः उन्होंने ठीक से चाहा ही न होगा।
ईसा का वचन हैः मांगों और वह मिलेगा।
पर कोई मांगे ही नहीं तो कसूर किसका है?
प्रभु को पाने से सस्ता और कुछ भी नहीं है। केवल उसे मांगना ही होता है। यद्यपि मांग जैसे-जैसे प्रबल होती है मांगने वाला वैसे ही वैसे विसर्जित होता जाता है। एक सीमा आती है, वाष्पीकरण का एक बिंदु आता है, जहां मांगने वाला पूरी तरह मिट जाता है और केवल मांग हो शेष रह जाती है। यही बिंदु प्राप्ति का बिंदु भी है। जहां मैं नहीं है वही सत्य है। यह अनुभूति ही प्रभु अनुभूति है।
अहं का अभाव ही ब्रह्म का सदभाव है।
वहां सबको मेरे प्रणाम कहना।

रजनीश के प्रणाम
2-12-1963

(प्रतिः श्री रोहित कुमार मित्तल, खंडवा (म. प्र.)

25/ साधना में धैर्य

प्रिय आत्मन्,
प्रणाम। आपके पत्र यथा समय मिल गए थे--पर मैं बहुत व्यस्त था इसलिए शीघ्र उतर नहीं दे सका। इस बीच निरंतर बाहर ही था; अभी जयपुर, बुरहानपुर, होशंगाबाद, चांदा आदि जगहों पर बोल कर लौटा हूं। लोग आत्मिक जीवन के लिए कितने प्यासे हैं! यह देख कर उन लोगों पर आश्चर्य होता है, जो कहते हैं कि लोगों की धर्म में रुचि नहीं रह गई है। यह तो कभी संभव ही नहीं है। धर्म से अरुचि का अर्थ है--जीवन में, आनंद में, अमृत में अरुचि। चेतना स्वभाव से ईश्वररोन्मुख है! स्वरूपतः सच्चिदानंद ब्रह्मा को पाकर ही उसकी तृप्ति है। वह, जो उसमें बीज की भांति छिपा है। यही स्रोत है धर्म के जन्म का और इसलिए धर्मों के जन्म होंगे, और मृत्यु होंगी, लेकिन धर्म शाश्वत है।
यह जानकर बहुत आनंद होता है कि आप धैर्य से प्रकाश पाने के लिए चल रहे हैं। साधना के जीवन में धैर्य सबसे बड़ी बात है। बीज को बोकर कितनी प्रतीक्षा करनी होती है। पहले श्रम व्यर्थ ही गया दीखता है। कुछ भी परिणाम आता हुआ प्रतीत नहीं होता। पर एक दिन प्रतीक्षा प्राप्ति में बदलती है। बीज फटकर पौधे के रूप में भूमि के बाहर आ जाता है। पर स्मरण रहे जब कोई परिणाम नहीं दिख रहा था, तब भी भूमि के नीचे विकास हो रहा था। ठीक ऐसा ही साधक का जीवन है। जब कुछ भी नहीं दिख रहा होता, तब भी बहुत कुछ होता है। सच तो यह है कि--जीवन शक्ति के समस्त विकास अदृश्य और अज्ञात होते हैं। विकास नहीं, केवल परिणाम ही दिखाई पड़ते हैं।
मैं आनंद में हूं। प्रभु का सान्निध्य आपको मिले यही कामना है। साध्य
कि चिंता छोड़कर साधना करते चलें फिर साध्य तो आपने आप निकट आता जाता है।

एक दिन आश्चर्य से भरकर ही देखना होता है कि यह क्या हो गया है ! मैं क्या क्या हो गया हूं ! तब जो मिलता है उसके समझ उसे पाने के लिए किया गया श्रम न कुछ मालूम होता है। सबको मेरा प्रेम कहें।

रजनीश के प्रणाम

(प्रतिः लाला सुंदरलाल , दिल्ली)

26/ प्रेम की वर्षा

प्यारी जया ,

प्रेम। तेरा पत्र मिला है। प्रेम मांगना नहीं पड़ता है और मांगे से वह मिलता भी नहीं है।

प्रेम तो देने से आता है।

वह तो हमारी ही प्रतिध्वनि है।

मैं प्रेम बन कर तो ऊपर बरसता हुआ प्रतीत हो रहा हूं क्योंकि तू मेरे प्रति प्रेम की सरिता बन गई है। ऐसे ही जिस दिन सारे जगत के प्रति तेरे प्रेम का प्रवाह बहेगा , उस दिन तू पाएगी कि सारा जगत ही तेरे लिए प्रेम बन गया है।

जो है --उस समय के प्रति बेशर्त प्रेम का प्रत्युत्तर ही तो परमात्मा की अनुभूति है।

रजनीश के प्रणाम
18-8-1969

(प्रतिः सुश्री जयवंती , जूनागढ़)

27/ जहां प्यास है वहां मार्ग भी है

प्रिय शिरीष ,

प्रेम। प्रभु के लिए ऐसी प्यास से आनंदित हूं। सौभाग्य से ही ऐसी प्यास होती है और जहां प्यास है वहां मार्ग भी है। वस्तुतः तो प्रगाढ़ अभीप्सा ही मार्ग बन जाती है। परमात्मा तो प्रतिक्षण ही पुकार रहा है किंतु हमारे हृदय के तार ही सोए हों तो वे प्रतिध्वनित नहीं हो पाते हैं। आंखें हम बंद किए हों तो सूर्य के द्वार पर खड़े होते हुए भी अंधकार ही होगा। सूर्य सदा ही द्वार पर है और उसे पाने को बस आंख खोलने से ज्यादा और कुछ भी नहीं करना है।

... प्रभु प्रकाश दे यही मेरी कामना है।

मैं और मेरा प्रेम सदा साथ है

परिवार में सभी को प्रणाम कहें। बच्चों को स्नेह।

रजनीश के प्रणाम
11-3-1966

(प्रतिः सुश्री शिरीष पै , बंबई)

28/ साधना के लिए श्रम और संकल्प

प्रिय शिरीष ,

प्रेम। उस दिन मिल कर मैं बहुत आनंदित हुआ हूं। तुम्हारे हृदय में जो आंदोलन चल रहा है, वह भी मैंने अनुभव किया और वह अभीप्सा भी जो कि तुम्हारी आत्मा में छिपी है। तुम अभी तक अपने उस व्यक्तित्व को नहीं पा सकी हो, जिसे पाने के लिए पैदा हुई हो। उसका बीज अंकुरित होना चाहता है। और भूमि भी तैयार है और बहुत प्रतीक्षा की जरूरत नहीं है। श्रम करना होगा और संकल्प को इकट्ठा करना होगा। एक बार यात्रा प्रारंभ होने की ही बात है फिर तो परमात्मा का गुरुत्वाकर्षण खुद ही खींचे लिए जाता है।

रजनीश के प्रणाम
26-3-1966

(प्रतिः सुश्री शिरीष पै, बंबई)

29/ प्रगाढ़ संकल्प

प्रिय, शिरीष,
मैं प्रवास से लौटा हूं तो तुम्हारा पत्र मिला है। जिस संकल्प का तुम्हारी अंतरात्मा में जन्म हो रहा है, मैं उसका स्वागत करता हूं। संकल्प की प्रगाढ़ता ही सत्य तक ले जाती है क्योंकि उसकी ही आधारभूमि पर स्वयं में अंतर्निहित शक्तियां जाग्रत होती हैं और असंगठित प्राण संगठित हो संगीत को उपलब्ध होते हैं। स्वयं के अणु में कितनी विराट ऊर्जा है, उसे तो संकल्प की परत तीव्रता के अतिरिक्त और किसी भी भांति नहीं जाना जा सकता है। क्या तुमने ऐसी चट्टानें नहीं देखी हैं, जिन्हें कि मजबूत से मजबूत छैनी से भी तोड़ा नहीं जा सकता है; लेकिन उन्हीं चट्टानों को किसी झाड़ी या पौधे का अंकुरण सहज दरारों से भर देता है। एक छोटा सा बीज भी जब ऊपर उठने और सूर्य को पाने के संकल्प से भर उठता है तो चट्टानों को भी उसे मार्ग देना ही पड़ता है। कमजोर बीज भी शक्तिशाली चट्टानों से जीत जाता है। कोमल बीज भी कठोर से कठोर चट्टान को तोड़ देता है। क्यों? क्योंकि चट्टान चाहे कितनी ही शक्तिशाली क्यों न हो, मृत है और मृत है इसलिए संकल्पहीन है। बीज है कोमल और कमजोर किंतु जीवत।
स्मरण रहे कि जीवन संकल्प में है। संकल्प जहां नहीं, वहां जीवन भी नहीं है। बीज का संकल्प ही शक्ति बन जाता है। उस शक्ति को पाकर ही उसकी छोटी-छोटी जड़ें चट्टान में प्रवेश करने लगती हैं और क्रमशः फैलने लगती हैं और एक दिन चट्टान को तोड़ डालती है। जीवन सदा ही मृत्यु से जीत जाता है। भीतर की जीतित शक्ति बाहर की मृत बाधाओं से न कभी हारी है, न कभी हार ही सकती है।

रजनीश के प्रणाम
2-4-1966

(प्रतिः सुश्री शिरीष पै, बंबई)

30/ शांति और अशांति सब हमारे सृजन हैं

प्रिय शिरीष,

प्रेम।
एमदेम वि भनउवनत के संबंध में पूछा है। मिलोगी तभी विस्तार से बात हो सकेगी। लेकिन सबसे पहले विनोद का भाव स्वयं के प्रति होना चाहिए। स्वयं के प्रति हंसना बहुत बड़ी बात है। और जो स्वयं के ऊपर हंस पाता है, वह धीरे-

19

धीरे दूसरों के प्रति बहुत दया और करुणा से भरा जाता है। इसी जगत में स्वयं जैसी हंसने योग्य न कोई घटना है, न वस्तु।

स्वप्नों के सत्य के संबंध में भी विस्तार से ही बात करनी होगी। कुछ स्वप्न निश्चित ही सत्य होते हैं। और मन जितना शांत होता जाएगा, उतनी ही स्वप्नों में भी सत्य की झलकें आनी शुरू होंगी। स्वप्नों के चार प्रकार हैं--(1) बीते जन्मों से संबंधित। (2) भविष्य जीवन से संबंधित। (3) वर्तमान से संबंधित और। (4) दमित कामनाओं से संबंधित। आधुनिक मनोविज्ञान केवल चौथे प्रकार के स्वप्नों के संबंध में ही आंशिक रूप से जानता है।
यह जानकर बहुत आनंदित हूं कि तुम्हारा मन क्रमशः शांति की और प्रगति
कर रहा है। मन वैसा ही हो जाता है, जैसा कि हम चाहें। अशांति और शांति--सब हमारे सृजन हैं। मनुष्य अपने ही हाथों अपनी ही बनाई जंजीरों में बंध जाता है और इसलिए मन से स्वतंत्र होने के लिए भी यह सदा ही स्वतंत्र है।

रजनीश के प्रणाम

(प्रतिः सुश्री शिरीष पै, बंबई)

31/ सेक्स-ऊर्जा का रूपांतरण

प्रिय शिरीष,
प्रेम। पत्र मिला।
डशु के संबंध में पूछा है। वह शक्ति भी परमात्मा की है। साधना से क्रमशः उसका भी रूपांतरण ढिरपीष्ल्लीरींळेर्पें हो जाता है। शक्ति तो कोई भी बुरी नहीं है। हां, शक्तियां के बुरे उपयोग अवश्य हैं। काम-वासना ही जब ऊर्ध्वगामी होती है तो ब्रह्मचर्य बन जाती है।
डशु के प्रति विरक्ति आ रही है, यह शुभ है पर इतना ही पर्याप्त नहीं है। उसके रूपांतरण की दिशा में विधायक रूप से साधना करनी आवश्यक है। अन्यथा अकेला निषेध चित्त को रूखा-सुखा, रस-शून्य कर जाता है।
यह भी सत्य है कि एमग के जीवन में तुम अकेली नहीं हो; लेकिन मूलतः और गहरे में काम वासना शरीर की नहीं, मन की वृत्ति है। मन पूर्णतः परिवर्तित हो, तो उसको परिणाम संबंधित दूसरे व्यक्ति पर भी पड़ना शुरू होता है। और जिससे इतने निकट के संबंध हैं, वह तो और भी शीघ्रता से प्रभावित होता है।
अभी, जब तक मुझे नहीं मिलती हो, तब तक कुछ बातें ध्यान में रखना।
1. डशु के प्रति चेष्ठित रूप से कोई दुर्भाव नहीं होना चाहिए।
विरक्ति आरोपित हो तो व्यर्थ है।
2. मैथुन की अवस्था में भी सजग और जागरूक भाव रखो। उस अवस्था में भी साक्षी रखो। उस क्षण को भी जो ध्यान और सम्यक स्मृति का क्षण बना लेता है, वही डशु की शक्ति को रूपांतरित करने में सफल होता है।
मैं जब मिलूंगा तब इस संबंध में और बातें हो सकेंगी। ब्रह्मचर्य तो पूरा होते है। लेकिन, सब से पहली बात है, स्वयं की शक्तियों के प्रति मैत्रीभाव। स्वयं की शक्तियों के प्रति शत्रुभाव रखने से आत्म-क्रांति तो नहीं होती, आत्मघात अवश्य ही हो जाता है।
वहां सबको मेरे प्रणाम कहना।
पूना तुम नहीं आ रही हो तो अभाव तो लगेगा ही।

रजनीश के प्रणाम
4-6-1966

(प्रतिः सुश्री शिरीष पै, बंबई)

32/ स्वयं की कील

प्रिय शिरीष,
प्रेम। तुम्हारा पत्र।
संसार चक्र घूम रहा है, लेकिन उसके साथ तुम क्यों घूम रही हो? शरीर और
मन के भीतर जो है, उसे देखो--वह तो न कभी घूमा है, न घूम रहा है, न घूम सकता है। वही तुम हो। तत्वमसि, श्वेतकेतु।
सागर की सतह पर लहरें हैं, पर गहराई में? वहां क्या है? सागर को उसकी सतह ही समझ लें तो बहुत भूल हो जाती है।
बैलगाड़ी के चाक को देखना। चाक घूमता है, क्योंकि कील नहीं घूमती है, स्वयं की कील का स्मरण रखो। उठते, बैठते, सोते, जागते उसकी स्मृति को जगाए रखो। धीरे धीरे सारे परिवर्तन के पीछे उसके दर्शन होने लगते हैं जो कि परिवर्तन नहीं है।
कविता के लिए पूछा है? किसी से पढ़वा कर थोड़ा सुना था। फिर मन में आया
कि शिरीष से ही सुनूंगा। अब तब सुनाओगे, तभी सुनूंगा। उसमें कविता और तुम दोनों को ही साथ पढ़ सकूंगा।

रजनीश के प्रणाम
(प्रतिः सुश्री शिरीष पै, बंबई)

33/ वर्तमान में अशेष भाव से जीना

प्यारी शिरीष,
यह शुभ है कि तू अतीत को भूल रही है। इससे जीवन के एक बिल्कुल ही अभिनव दिशा आरंभ होगी। वर्तमान में पूरी तरह होना ही मुक्ति है। चित्त स्मृति के अतिरिक्त अतीत की कोई सत्ता नहीं है और ना ही गगन बिहारी कल्पना को छोड़ भविष्य का ही कोई अस्तित्व है। जो है, वह तो सदा वर्तमान है। उस वर्तमान में जो अशेष भाव से जीने लगता है, वह परमात्मा में ही जीने लगता है। अतीत और भविष्य से मुक्त होते ही चित्त शांत और शून्य हो जाता है। उसकी लहरें विलीन हो जाती हैं और तब तो वही बचता है जो कि असीम है और अनंत है। वह सागर ही सत्य है। तेरी सरिता उस सागर तक पहुंचे यही मेरी कामना है।

रजनीश के प्रणाम
19-2-66
पुनश्चः संभवतः जनवरी में मैं अहमदाबाद जाऊं--क्या तू मेरे साथ वहां
चल सकेगी। किसी प्रवास में दो-चार दिन साथ रहे तो अच्छा हो।

(प्रतिः सुश्री शिरीष पै, बंबई)

34/ प्रेम के स्वर

प्यारी शिरीष
प्रेम से बड़ी चीज और देने को क्या है? और फिर भी तू कहती हैः क्या दिया
है मैंने? पागल! प्रेम देने के बाद तो फिर न देने का ही कुछ बचता है और देने वाला ही बचता है। क्योंकि प्रेम देना वस्तुतः स्वयं को ही देना है। तूने दिया है स्वयं को। और अब तू कहां है?
और स्वयं को खोकर अब तू निश्चय ही उस शिरीष को पा लेगी जिसे कि पाना चाहती थी। उस शिरीष का जन्म हो गया है। मैं हूं साक्षी उनका। मैं हूं उसका गवाह। वह संगीत मैं सुन रहा हूं जो तू बनेगी। उस दिन हृदय जब हृदय के निकट

था तभी सुन लिया था उस संगीत को। बुद्धि जानती है वर्तमान को लेकिन हृदय के लिए तो भविष्य भी वर्तमान ही है।

रजनीश के प्रणाम
5-4-1967

(प्रतिः सुश्री शिरीष पै, बंबई)

35/ अंतर्मिलन

मेरे प्रिय,
प्रेम।
ऐसा कहां होता है कि दो व्यक्तियों में मिलन हो पाए?
इस पृथ्वी पर तो नहीं ही होता है न?
संवाद असंभव ही प्रतीत होता है।
लेकिन कभी-कभी असंभव भी घटता है।
उस दिन ऐसा ही हुआ।
आपसे मिल कर लगा कि मिलन भी हो सकता है।
और संवाद भी। और शब्दों के बिना भी।
और आपके आंसुओं से मिला उत्तर।
उन आंसुओं के प्रति मैं अत्यंत अनुगृहीत हूं।
ऐसी प्रतिध्वनि तो कभी-कभी ही होती है।
मधुशाला देख गया हूं। फिर फिर देख गया हूं।
गीत गा सकता तो जो मैं गाता वही उसमें गाया हैं।
संसार को भी आनंद से स्वीकार कर सके ऐसे संन्यास को ही मैं संन्यास कहता हूं।
क्या सच ही संसार और मोक्ष एक ही नहीं है?
अज्ञान में द्वैत है। ज्ञान में तो बस एक ही है।
आह! प्रेम और आनंद के जो गीत गा नाच न सके वह भी क्या धर्म है?

रजनीश के प्रणाम
8-9-69

पुनश्चः शिव कहता है कि आप यहां आने को हैं?
आएं--जल्दी ही। समय का क्या भरोसा है?
देखें सुबह हो गई है और सूरज जन्म गया है?
अब उसके अस्त हो जाने में देर ही कितनी है?

(प्रतिः कविवर बच्चन, दिल्ली)

36/ मौन अभिव्यक्ति

प्यारी कुसुम,
प्रेम। तेरे हृदय की भांति ही सरल और कुआंरा पत्र पाकर अति आनंदित हूं।
वह तू लिखना चाहती है जो कि लिखा ही नहीं जा सकता है, इसलिए अनलिखा पत्र ही भेज देती है।
यह भी ठीक ही है; क्योंकि जो न कहा जा सके, उस संबंध में मौन ही उचित है।
लेकिन ध्यान रहे कि मौन भी मुखर है।

वह भी कहता है और बहुत कहता है।
शब्द जिसे नहीं कह पाते हैं, मौन उसे भी कह पाता है।
रेखाएं जिसे नहीं घेर पाती हैं, शून्य उसे भी घेर लेता है।
असल में तो शून्य से अनघिरा बच ही क्या सकता है?
मौन से अनकहा कभी कुछ नहीं बचता है।
शब्द जहां व्यर्थ है, निशब्द वहीं सार्थक है।
आकार की जहां सीमा है, निराकर का वहीं प्रारंभ है।
इसीलिए वेद का जहां अंत है, वेदांत का वही जन्म है।
वेद की मृत्यु ही वेदांत है।
शब्द से मुक्ति ही सत्य है।
कपिल को प्रेम। असंग को आशीष।

रजनीश के प्रणाम
3-11-69

(प्रतिः श्रीमती कुसुम, लुधियाना, पंजाब)

37/ प्रार्थना और प्रतीक्षापूर्ण समर्पण

प्यारी कुसुम,
प्रेम। मैं बाहर से लौटा हूं तो तेरे पत्र मिले हैं।
भूमि में पड़ा बीज जैसे वर्षा की प्रतीक्षा करता है, ऐसे ही प्रभु की प्रतीक्षा करती है।
प्रार्थना और प्रतीक्षापूर्ण समर्पण ही उसका द्वार भी है।
स्वयं को पूर्णतया छोड़ दे--ऐसे जैसे कि कोई नाव नदी में बहती है।
पतवार नहीं चलाना है, बस नाव का छोड़ देना है।
तैरना नहीं है--बस बहना है।
फिर तो नदी स्वयं ही सागर तक पहुंचा देती है।
सागर तो अति निकट है, लेकिन उन्हीं के लिए जो कि तैरते नहीं, बहते हैं।
और डूबने का भय मत रखना क्योंकि फिर उसी से तैरने का जन्म हो जाता है।
सच तो यह है कि प्रभु में जो डूबता है, वह सदा के लिए उबर जाता है।
और कहीं पहुंचने की आकांक्षा भी मत रखना।
क्योंकि जो कहीं पहुंचना चाहता है, वह तैरने लगता है।
सदा ध्यान रखना कि जहां पहुंच गए वही मंजिल है।
इसलिए जो प्रभु को मंजिल बनाते हैं, वे भटक जाते हैं।
सर्व मंजिलों से मुक्त होते ही चेतना जहां पहुंच जाती है, वही परमात्मा है।
कपिल को प्रेम। असंग को आशीष।

रजनीश के प्रणाम
19-11-69

(प्रतिः सुश्री कुसुम, लुधियाना)

38/ जीवन के अनंत रूपों का स्वागत

प्यारी अनसूया,
प्रेम। तेरे पत्र ने हृदय को आनंद से भर दिया है।
एक बड़ी क्रांति के द्वार पर तू खड़ी है।
और तू उससे भागना भी चाहे तो मैं तुझे भागने न दूंगा।

उसमें निश्चय ही तुझे मिटना होगा।
लेकिन इसीलिए कि नयी होकर तू प्रकट हो सके।
स्वर्ण को अग्नि से गुजरना पड़ता है और तभी वह शुद्ध हो पाता है।
प्रेम तेरे लिए अग्नि है।
उसमें तेरे अस्मिता जल जाए ऐसी ही प्रार्थना मैं प्रभु से करता हूं।
और प्रेम आए तो फिर प्रार्थना भी आ सकती है।
प्रेम के अभाव में तो प्रार्थना असंभव है।
और ध्यान रखना कि शरीर और आत्मा दो नहीं हैं।
व्यक्तित्व का जो हिस्सा दिखाई पड़ता है वह शरीर है और जो नहीं दिखाई पड़ता है, वह आत्मा है।
और यही सत्य पदार्थ और परमात्मा के संबंध में भी सत्य है।
दृश्य परमात्मा पदार्थ है और अदृश्य पदार्थ परमात्मा है।
जीवन के सहजता और सरलता से ले।
स्वीकार से उसके अनंत रूपों का स्वागत कर।
और जीवन पर स्वयं को मत थोप।
जीवन का अपना अनुशासन है, अपना विवेक है आर जो उसे समग्रता से जीने को तैयार हो जाते हैं, उन्हें फिर किसी और अनुशासन और विवेक की आवश्यकता नहीं रह जाती है।
लेकिन तू सदा जीवन से भयभीत रही है।
इसीलिए प्रेम से भयभीत है।
लेकिन वह क्षण आ ही गया कि जीवन तेरी सुरक्षा दीवारों को तोड़ कर भीतर
आ गया है। वह प्रभु की तुझ पर अनंत कृपा है।
अब उससे भाग मत।
अनुग्रहपूर्वक उसे भेंट ले।
और मेरी शुभकामनाएं तो सदा तेरे साथ ही हैं।

रजनीश के प्रणाम
3-11-69

(प्रतिः सुश्री अनसूया, बंबई)

39/ जहां प्रेम है, वहीं प्रार्थना है

प्यारी डाली,
प्रेम। तेरे पत्र मिले हैं। लेकिन उन्हें केवल पत्र ही तो कहना कठिन है? वस्तुतः तो वे प्रेम से जन्मी कविताएं हैं। प्रेम से और प्रार्थना से भी। क्योंकि जहां प्रेम है, वहां प्रार्थना है।
इसीलिए, जिससे प्रेम है, उसमें परमात्मा की झलक मिलने लगती है।
प्रेम वो आंखें दे देता है, जिनसे कि परमात्मा देखा जा सकता है।
प्रेम उसके दर्शन का द्वार है।
और जब समग्र से प्रेम होता है तो वह समग्र में दिखाई पड़ने लगता है।
लेकिन अंश और अंशी में काई विरोध नहीं है।
एक से भी प्रेम की गहराई अंततः समग्र पर फैलने लगती है।
क्योंकि प्रेम व्यक्तियों को पिघला देता है और फिर अव्यक्ति हो शेष
रह जाता है।
प्रेम है सूर्य की भांति।
व्यक्ति है जमी हुई बर्फ की भांति।
प्रेम का सूर्य बर्फ-पिंडों को पिघला देता है और फिर जो शेष रह जाता
है वह असीम सागर है।
इसलिए प्रेम की खोज वस्तुतः परमात्मा की ही खोज है।
क्योंकि, प्रेम पिघलता ही है और मिटाता ही हैं।
क्योंकि, प्रेम पिघलाता ही है और मिटाता ही है।

क्योंकि वह जन्म भी है और मृत्यु भी है।
उसमें स्व मिटता है और सर्व जन्मता है।
और निश्चय ही मृत्यु में पीड़ा है और जन्म में भी।
इसीलिए प्रेम एक गहरी पीड़ा है।
मृत्यु की और प्रसव की भी।
लेकिन तुझसे ले रहे काव्य संकेत मुझे आश्वस्त करते हैं कि प्रेम की पीड़ा के आनंद का अनुभव प्रारंभ हो गया है।

रजनीश के प्रणाम
3-11-69

(प्रतिः सुश्री डाली दीदी, पूना, महाराष्ट्र)

40/ अनंत प्रतीक्षा ही साधना है

प्यारी कंचन,
प्रेम। तेरा पत्र मिले बहुत देर हो गई है।
और प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा करते करते भी तू थक गई होगी! लेकिन धैर्य पूर्ण प्रतीक्षा का अपना ही आनंद है।
परमात्मा के पथ पर तो अनंत प्रतीक्षा ही साधना है।
प्रतीक्षा और प्रतीक्षा और प्रतीक्षा...
और फिर जैसे कली फूल बनती है, वैसे ही सब कुछ अपने आप हो जाता है।
नारगोल तो आ रही है न?
वहां सबके प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
2-10-68

(प्रतिः सुश्री कंचन बहुन, बलसार, गुजरात)

41/ प्रार्थनापूर्ण प्रतीक्षा ही प्रेम है

मेरे प्रिय,
प्रेम। तुम्हारा पत्र पाकर कितना आनंदित हूं? कैसे कहूं?
जब भी तुम्हें देखता था लगता थाः कब तक--कब तक दूर रहोगे?
और जानता था कि तुम्हें पास तो आना ही है--
बस समय का ही सवाल है।
इसलिए, प्रतीक्षा करता रहा और तुम्हारे लिए परमात्मा से प्रार्थना भी।
मैं तो प्रार्थनापूर्ण प्रतीक्षा को ही प्रेम कहता हूं।
और यह भी मैं जानता था कि तुम प्रसव पीड़ा से गुजर रहे हो और तुम्हारा दूसरा जन्म अत्यंत निकट है।
क्योंकि उस जन्म से ही तुम्हारे गीतों को आत्मा मिल सकती थी।
शब्द तो शरीर है।
शरीर का भी अपना सौंदर्य है, अपनी लय है, अपना संगीत है।
लेकिन वह पर्याप्त नहीं है।
और उस अपर्याप्त को ही जो पर्याप्त समझ लेता है, वह सदा को ही अतृप्त
रह जाता है।
काव्य की आत्मा तो निशब्द में है।

मैं तो प्रार्थनापूर्ण प्रतीक्षा को ही प्रेम कहता हूं। और शून्य, प्रभु के मंदिर का द्वार है।
तुम मेरे निकट आए हो और मैं तुम्हें प्रभु के निकट ले चलना चाहता हूं।
क्योंकि उसके निकट आए बिना तुम मेरे निकट भी तो कैसे आ सकते हो?
वस्तुतः तो उसके निकट आए बिना कोई अपने भी निकट ही आ सकता है।
और उसके निकट पहुंचते ही वह जन्म हो जाता है, जिसके लिए तुमने बहुत जन्म लिए हैं।
स्वयं के निकट आ जाना ही दूसरा जन्म है।
द्विज होने का सूत्र वही है।
और ध्यान रखना कि सड़क पर पड़ा हुआ कंकड़ कोई भी नहीं है--सड़क पर पड़े हुए कंकड़ भी नहीं--बस वे भी दूसरे जन्म की प्रतीक्षा में हैं--क्योंकि दूसरा जन्म प्रत्येक को हीरा बना देता है।

रजनीश के प्रणाम
7-12-69

प्रनश्चः वासना के पीछे दौड़ना एक मृग-मरीचिका के पीछे दौड़ते रहना है।
वह एक मृत्यु से दूसरी की यात्रा है। जीवन के भ्रम में इस भांति मनुष्य बार-बार मरता है। लेकिन जो वासना के प्रति मरने को राजी हो जाते हैं, वे पाते हैं कि उनके लिए स्वयं मृत्यु ही मर गई है।

(प्रतिः श्री रामकृष्ण दीक्षित विश्व, जबलपुर (म. प्र.)

42/ मैं--एक स्वप्न--एक निद्रा

प्यारी कंचन,
प्रेम। तेरा पत्र और तेरी जिज्ञासा।
मैं जहां है वही बाधा है।
इसलिए प्रतिपल--जागते सोते, उठते-उठते--मैं के प्रति सजग वह।
वह कहां-कहां और कब-कब उठता है, उसे देख पहचान और स्मरण रख।
क्योंकि उसकी पहचान--उसकी प्रत्यभिज्ञा (त्तमबवहदपजपवद) ही उसकी मृत्यु है।
वह सत्य नहीं है--बस स्वप्न ही है।
और स्वप्न के प्रति जागने से स्वप्न टूट जाता है।
स्वप्न को छोड़ नहीं जा सकता है।
जो है ही नहीं--उसे छोड़ने का उपाय ही नहीं है।
उसके प्रति तो बस जागना ही पर्याप्त है।
अहंकार मनुष्य का स्वप्न है--उसकी निद्रा है।
इसलिए जो उसे छोड़ने--त्यागने की चेष्टा में पड़ते हैं वे और भी दूसरे भ्रम में पड़ते हैं।
उसकी विनम्रता--निरहंकारिता भी स्वप्न ही होती है।
जैसे कोई निद्रा में ही जागने का स्वप्न देख ले।
तू उस चक्कर में मत पड़ जाना।
बस एक ही ध्यान रख--जाग और पहचान।
वहां सबको प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
18-7-1968

(प्रतिः सुश्री कंचन बहन, बलसार, गुजरात)

26

43/ अनलिखा पत्र

प्यारी दर्शन,
प्रेम। तेरा पत्र मिला है।
उसे पाकर अति आनंदित हूं।
इसलिए भी कि तूने अनलिखा--कोरा कागज भेजा है।
लेकिन, मैंने उसमें वह सब पढ़ लिया है, जो कि तूने कहीं लिखा है, लेकिन लिखना चाहती थी।
शब्द वैसे भी क्या कह पाते हैं?
और लिखकर भी तो जो लिखना था, वह सदा अनलिखा ही रह जाता है।
इसलिए तेरा मौन पत्र बहुत प्यारा है।
वैसे भी जब तू मिलने आती है तो चुप ही रहती है।
लेकिन तेरी आंखें सब कह देती हैं।
और तेरा मौन भी।
किसी गहरी प्यास ने तुझे स्पर्श किया है।
किसी अज्ञात तट ने मुझे पुकारा है।
प्रभु जब बुलाता है तो ऐसे ही बुलाता है।
लेकिन कब तक तट पर खड़े रहना है?
देख--सूरज निकल आया है और हवाएं नाव के पालों को उड़ाने को कैसी आतुर हैं।

रजनीश के प्रणाम
7-12-1969

(प्रतिः सुश्री दर्शन वालिया, बंबई)

44/ चिंताओं का अतिक्रमण

मेरे प्रिय,
प्रेम। आपका पत्र पाकर अति आनंदित हूं।
जीवन में चिंताएं हैं, लेकिन चिंतित होना आवश्यक नहीं है।
क्योंकि, चिंतित होना चिंताओं पर नहीं, वर उनके प्रति हमारे दृष्टि कोण (ःजजपजनकम) निर्भर है।
इसलिए चिंतित व्यक्तित्व सदा ही हमारा चुनाव है।
और अचिंतित व्यक्तित्व भी।
ऐसा नहीं है कि अचिंतित व्यक्तित्व के लिए चिंताएं नहीं होती हैं।
चिंताएं तो होती ही हैं।
वे तो जीवन का अनिवार्य हिस्सा हैं।
लेकिन वह उन्हीं ओढ़ कर नहीं बैठ जाता है।
वह सदा ही उनके पार देख पाता है।
अंधेरी रात्रियां उसे भी घेरती हैं, लेकिन उसकी दृष्टि सुबह के उगने वाले सूरज पर लगी होती है।
इसलिए, उसकी आत्मा कभी भी अंधकार में नहीं डूब पाती है। और बस इतना ही आवश्यक है कि आत्मा अंधकार में न डूबे।
शरीर तो डूबेगा ही।
वस्तुतः वह तो डूबा ही है।
मरणधर्मा का जीवन अंधकार में ही है।
आलोक में अमृत के अतिरिक्त और कोई अपनी जड़ें फैलना चाहे तो कैसे फैला सकता है?
गुण को प्रेम।
बच्चों को आशीष।
सबको प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
7-12-1970

(प्रतिः श्री ईश्वरभाई शाह, जीवन जागृति केंद्र, बंबई)

45/ काम-वृत्ति पर ध्यान

मेरे प्रिय,
प्रेम। तुम्हारा पत्र मिला।
काम वासना से भयभीत न हों।
क्योंकि भय हार की शुरुआत है।
उसे भी स्वीकार करें।
वह भी है और अनिवार्य है।
हां--उसे जानें जरूर--पहचानें।
उसके प्रति जागें।
उसे अचेतन (न्नदबवदेबपवने) से चेतन (ींवदेबपवने) बनाएं।
निंदा से यह कभी भी नहीं हो सकता है।
क्योंकि, निंदा दमन (त्तमचतमेपवद) है।
और दमन ही वृत्तियां को अचेतन में ढकेल देता है।
वस्तुतः तो दमन के कारण ही चेतना चेतन और अचेतन में विभाजित हो गई है।
और यह विभाजन समस्त द्वंद्व (ींवदसिपबज) का मूल है।
यह विभाजन ही व्यक्ति को अखंड नहीं बनने देती है।
और अखंड बने बिना शांति का, आनंद का, मुक्ति का कोई मार्ग नहीं है।
इसलिए कामवासना पर ध्यान करो।
जब वह वृत्ति उठे तो ध्यान पूर्वक (ऊपदकनिससल) उसे देखो।
न उसे हटाओ, न स्वयं उससे भागो।
उसका दर्शन अभूतपूर्व अनुभूति में उतार देता है।
और ब्रह्मचर्य इत्यादि के संबंध में जो भी सीखा सुना हो,
उसे एकबारगी कचरे की टोकरी में फेंक दो
क्योंकि, इसके अतिरिक्त ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होने का और कोई मार्ग नहीं है।
वहां सबको मेरा प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
16-2-70

(प्रतिः श्री जयंतीलाल, भावनगर, गुजरात)

46/ जीओ उन्मुक्त, पल-पल

मेरे मित्र,
प्रेम। आनंद को चाहो ही मत।
क्योंकि, वह चाह ही आनंद के मार्ग में बाधा है।
जीवन को जीओ।
चाह के किनारों में बांध कर नहीं।
लक्ष्य की मंजिल को ध्यान में रख कर नहीं।
जीओ। उन्मुक्त।
जीओ। पल पल।
और डरो मत।

भयभीत न होओ।
क्योंकि खोने को कुछ भी नहीं है?
और पाने को कुछ भी नहीं है।
और जिस क्षण ऐसे हो रहोगे उसी क्षण जीवन का सब कुछ मिल जाता है।
लेकिन, भूल की भी जीवन के द्वार पर भिखारी होकर मत जाना।
कुछ मांगते हुए मत जाना।
क्योंकि वह द्वार भिखारियों के लिए कभी खुलता ही नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
17-2-70

(प्रतिः श्री जयंत भट, नारगोल, जिला बलसाड, (गुजरात)

47/ बिल्कुल ही टूट जा, मिट जा

प्यारी अनुसूया,
प्रेम। लिखा है तूने कि टूट सी गई है।
अच्छा है कि बिल्कुल ही टूट जा, मिट ही जा।
जो है--वह तो सदा ही है, लेकिन जो हुआ है वह तो टूटेगा ही।
होना मिटाने की तैयारी है।
और इसलिए स्वयं को बचाना ही मत।
जो बचाता है, वह नहीं बचता है।
और जो मिट जाता है वह उसे पा लेता है जो कि मिटने और बनने के बाहर है।
लेकिन तू स्वयं को बचाने में लगी है!
इसलिए तो टूट अखरता है!
लेकिन बचाने को है भी क्या?
और जो बचाने योग्य है वह तो बचा ही हुआ है।

रजनीश के प्रणाम
16-2-70

(प्रतिः सुश्री अनुसूया बहन, बंबई)

48/ प्रभु की प्यास

प्यारी कुसुम,
प्रेम। तेरा पत्र मिल गया है।
गर्मी के बाद जैसे धरती वर्षा के लिए प्यासी होती है;
ऐसे ही तू प्रभु के लिए प्यासी है।
यह प्यास ही तो उसकी बदलियों के लिए निमंत्रण बन जाती है।
और निमंत्रण पहुंच गया है।
तू तो बस ध्यान में ही डूबती जा
उसकी करुणा की वर्षा तो होगी ही।
बस इधर तू तैयार भर हो--वह तो उधर सदा ही तैयार है।
देख--क्या आकाश में उसकी बदलियां नहीं मंडराने लगी हैं।
कपिल से प्रेम।
असंग को आशीष।

रजनीश के प्रणाम
16-2-70

(प्रतिः सुश्री कुसुम बहन, लुधियाना)

49/ जीवन-दृष्टि

मेरे प्रिय,
प्रेम। विश्राम परम लक्ष्य है, श्रम साधन।
पूर्ण विश्राम परम लक्ष्य है जहां कि श्रम से पूर्ण मुक्ति है।
फिर जीवन लीला है।
फिर श्रम है तो खेल है।
ऐसे खेल से ही समस्त संस्कृति का जन्म हुआ है।
काव्य, दर्शन, धर्म सब विश्राम की उपलब्धियां हैं।
आज तक सब के लिए ऐसा नहीं हो सका है।
लेकिन टेकनालॉजी और विज्ञान के द्वारा भविष्य में यह संभव है।
इसलिए ही मैं टेकनालॉजी के पक्ष में हूं।
लेकिन जो श्रम में किसी आंतरिक मूल्य (टदजतपदेपब अंसनम) का दर्शन करते हैं,
वे यंत्रों का विरोध ही करते हैं, और कर सकते हैं।
मेरे लिए श्रम में कोई आंतरिक मूल्य नहीं है।
विपरीत, वह एक बोझ हैं।
जब तक विश्राम के लिए श्रम आवश्यक है, तब तक श्रम आनंद नहीं हो सकता है।
जब विश्राम से और परिणामतः स्वेच्छा से श्रम निकलता है, तभी वह आनंद होता है और हो सकता है।
इसलिए मैं आराम को हराम करने में असमर्थ हूं।
फिर मैं त्याग का भी समर्थक नहीं हूं।
मैं यह भी नहीं चाहता हूं कि एक व्यक्ति दूसरे के लिए जिए या एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी के लिए कुर्बानी करे। ऐसी कुर्बानियां बहुत महंगी पड़ी हैं, और जो उन्हें करता है वह उनके बदले में अमानवीय अपेक्षाएं करने लगता है।
बापों को बेटों से असंभव अपेक्षाओं का कारण ही यही है।
फिर यदि हर बाप अपने बेटे के लिए जिए तो कोई भी कभी जी ही नहीं पाएगा, क्योंकि हर बेटा बाप बनने को है।
नहीं--मैं तो चाहता हूं कि प्रत्येक अपने लिए जिए--अपने सुख के लिए-- अपने विश्राम के लिए।
बाज जब सुखी होता है तब अपने बेटे के लिए सहज ही ही बहुत कुछ कर पाता है।
वह सब उसके बाप और सुखी होने से ही निकल आता है।
वह कुर्बानी नहीं है और न ही त्याग है।
वह सब तो बाप होने का आनंद है।
और तब बेटों से अमानवीय अपेक्षाएं नहीं रखता है।
और जहां अपेक्षाओं का दबाव नहीं, वह अपेक्षाएं भी पूरी हो सकती हैं।
वह पूरा होना भी बेटे के बेटे होने से निकलता है।
संपेक्ष में, मैं प्रत्येक व्यक्ति को स्वार्थी होना सिखाता हूं।
परार्थ की शिक्षाओं ने मनुष्य को आत्मघात के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सिखाया है।
और आत्मघाती मनुष्य सदा ही परघाती होता है।
दुखी दूसरों को भी दुख बांटता रहता है।
मैं भविष्य के लिए भी वर्तमान की बलि चढ़ाने के विरोध में हूं।
क्योंकि जो है, वह वर्तमान है।
उसे जिए उसकी पूर्णता में और फिर उससे भविष्य भी जन्मेगा।
लेकिन वह भी जब जाएगा तब वर्तमान ही होगा।

और जिसने वर्तमान को भविष्य पर बलि करने की आदत बना ली है उसके लिए भविष्य कभी भी आने को नहीं है।
क्योंकि जो आता है वह सदा न आए के लिए बलि कर दिया जाता है।
और अंततः आपने पूछा है कि आप भी तो दूसरों के लिए और भविष्य के लिए श्रम कर रहे हैं?
प्रथम तो मैं श्रम कर ही नहीं रहा हूं।
क्योंकि जो भी मैं कर रहा हूं वह मेरा विश्राम का ही बहाव है।
मैं तेरे नहीं रहा है--बस बह ही रहा हूं।
और दूसरों के लिए कोई कभी कुछ कर ही नहीं सकता है।
हां--जो मैं हूं, उससे दूसरों के लिए कुछ हो जाए तो वह दूसरी बात है।
उसमें भी मैं कर्त्ता नहीं हूं।
और रहा भविष्य?
सो मेरे लिए तो वर्तमान ही सब कुछ है।
अतीत भी वर्तमान है--जो जा चुका, और भविष्य भी--जो कि आने को है।
और जीना तो सदा--अभी और यहां (भमतम छवू) है, इसलिए मैं अतीत और भविष्य
की चिंता नहीं करता हूं।
और आश्चर्य तो यह है कि जब से मैंने उनकी चिंता छोड़ी है, तब से वे मेरी चिंता करने लगे हैं।
वहां सबको मेरे प्रणाम

रजनीश के प्रणाम
2-1-1970

(प्रतिः श्री शयवंत, मेहता, 21.22 प्रीतमनगर, एलिस बृज, अहमदाबाद)

50/ जीवन निष्प्रयोजन है

प्रिय मथुरा बाबू,
प्रेम। पत्र मिला है।
प्रयोजन खोजते ही क्यों हैं?
खोजेंगे तो वह मिलेगा ही नहीं।
क्योंकि, वह तो सदा खोजने वाले में ही छिपा है।
जीवन निष्प्रयोजन है।
क्योंकि, जीवन स्वयं ही अपना प्रयोजन है।
इसलिए जो निष्प्रयोजन जीता है, वही केवल जीता है।
जीए--और क्या जीना ही काफी नहीं है?
जीने से और ज्यादा की आकांक्षा जी ही न पाने से पैदा होती है।
और इससे ही मृत्यु का भय भी पकड़ता है।
जो जीता है, उसकी मृत्यु ही कहां है?
जीना जहां समग्र और सघन है, वहां मृत्यु के भय के लिए अवकाश ही नहीं है।
वहां तो मृत्यु के लिए अवकाश नहीं है।
लेकिन प्रयोजन की भाषा में न सोचें।
वह भाषा ही रुग्ण है।
आकाश निष्प्रयोजन है।
परमात्मा निष्प्रयोजन है।
फूल निष्प्रयोजन खिलते हैं।
और तारे निष्प्रयोजन चमकते हैं।
तो बेचारे मनुष्य ने ही क्या बिगाड़ा है, कि वह निष्प्रयोजन न हो सके? लेकिन मनुष्य सोच सकता है, इसलिए उपद्रव में पड़ता है।
थोड़ा सोच सदा ही उपद्रव में ले जाता है।
सोचना ही है तो पूरा सोचें।

फिर सिर घूम जाता है और सोचने से मुक्ति हो जाती है।
और तभी जीने का प्रारंभ होता है।

रजनीश के प्रणाम
2-1-1970
(प्रतिः श्री मथुरा बाबू, पटना)

51/ शून्य ही द्वार है, मार्ग है, मंजिल है

मेरे प्रिय,
प्रेम।
सहारे मात्र बाधाएं हैं।
सब सहारे छोड़ें, क्योंकि तभी उसका सहारा मिल सकता है।
वह तो केवल बेसहारों को सहारा है।
और उसके अतिरिक्त गुरु और कोई भी नहीं है।
शेष सब गुरु उसके मार्ग में अवरोध हैं।
गुरु को पाना हो तो गुरुओं से बचे।
और शून्य होने से न डरे।
क्योंकि वहीं द्वार है।
वही मार्ग है।
वही मंजिल है।
शून्य होने का साहस ही पूर्ण होने की क्षमता है।
जो भरे हैं, वे खाली रह जाते हैं।
और जो खाली हैं, वे मर जाते हैं।
ऐसा ही उसका गणित है।
और कुछ करने की न सोचें।
करने से वह नहीं मिलता है।
न जप से, न पत से।
क्योंकि वह तो मिला ही हुआ है।
रुकें और देखें।
करना ही दौड़ना है।
न करना ही रुकना है।
आह! काश! वह दूर होता तो दौड़ कर मिल जाता।
लेकिन, वह तो निकट से भी निकट है।
काश! उसे खोया हो तो खोज भी लेते।
लेकिन, उसे खोया ही कब है?

रजनीश के प्रणाम
13-5-1970

(प्रतिः श्री रमाकांत उपाध्याय, काठमांडू, नेपाल)

52/ प्राणों की आतुरता

प्यारी कुसुम,
प्रेम। एक ऐसा संगीत भी है, जहां कि स्वर नहीं है।
प्राण उस स्वर शून्य संगीत के लिए ही आतुर है।
एक ऐसा प्रेम भी है, जहां कि शरीर नहीं है।
प्राण उस शरीर मुक्त प्रेम के लिए ही आतुर है।
एक ऐसा सत्य भी है जहां कि आकार नहीं है।

प्राण उस निराकार सत्य के लिए ही आतुर है।
इसीलिए, स्वरों से तृप्ति नहीं होती है।
इसीलिए, शरीरों से संतोष नहीं होता है।
इसीलिए, आकार से आत्मा नहीं भरती है।
लेकिन, इस अतृप्ति, इस संतोष को ठीक से पहचानना आवश्यक है।
क्योंकि, वह पहचान ही अंततः अतिक्रमण (ैंतंदेबमदकमदबम)बनती है।
फिर स्वर ही स्वर शून्यता का द्वार बन जाता है।
और शरीर ही अशरीरी का मार्ग बन जाता है।
और आकार ही निराकार हो जाता है।

रजनीश के प्रणाम
13-5-70

(प्रतिः सुश्री कुसुम बहन, लुधियाना)

53/ युवक क्रांति दल

मेरे प्रिय,
प्रेम। मैं प्रवास में था। लौटा हूं तो तुम्हारा पत्र मिला है। जीवन जागृति केंद्र के मित्रों से मिल कर युवक क्रांति दल का कार्य शुरू कर सकते हो। उसका कोई विधान नहीं है। क्रांति का विधान हो भी नहीं सकता है। युवकों में विचार की जागृति हो और अंधविश्वासों की जगह वैज्ञानिक चिंतना जगह ले। इतनी ही भर अपेक्षा है। इस बार जब मैं इंदौर आऊं तो जरूर मिलना। शेष शुभ। वहां सबको प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
22-11-1970

(प्रतिः श्री दिनेश शाही, इंदौर (म. प्र.)

54/ जीवन है असुरक्षा--अव्यवस्था

प्यारी जयति,
प्रेम। तेरा पत्र पाकर आनंदित हूं।
इतनी ही पीड़ा झेलनी पड़ती है--यह तो प्रसव पीड़ा है न, स्वयं को जन्म देने की प्रसव पीड़ा।
और पीछे लौटना संभव नहीं है।
जहां लौटा जा सके, वह अतीत बचता ही कहां है?
समय उन सीढ़ियों को सदा ही गिरा देता है जिससे चढ़ कर कि हम वर्तमान तक आते हैं।
लौटना नहीं, बस आगे जाना ही संभव है।
आगे और आगे।
और अंतहीन है वह यात्रा।
मंजिल नहीं है, मुकाम नहीं है।
बस पड़ाव हैं क्षण भरी के।
तंबू हैं कि लग भी नहीं पाते उखड़ना शुरू हो जाता है।
और अव्यवस्था से भयभीत क्यों?
व्यवस्थाएं मात्र झूठी हैं।
जीवन है अव्यवस्था--असुरक्षा।
और जिसे सुरक्षित होना है, उसे मरने के पहले ही मर जाना होता है।

लेकिन, मरने की जल्दी क्या है।
वह कार्य तो मृत्यु स्वयं ही कर देगी। तब क्या ठीक नहीं है कि हम जी लें।
और आश्चर्य तो यह है कि जीना जान लेता है, मृत्यु उसका घर भूल जाती है।
क्योंकि, यही आवश्यक है।
माली बीज बोकर क्या चुपचाप प्रतीक्षा नहीं करता है?
लेकिन जब भी मेरी जरूरत होगी तब तू पाएगी कि मैं सदा पास में ही हूं।
डाक्टर को प्रेम।
वहां सबको प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
17-2-70

(प्रतिः सुश्री जयवंती, जूनागढ़)

55/ प्रेम के दो रूपः काम और करुणा

मेरे प्रिय,
प्रेम। आपका पत्र मिल गया है।
प्रेम और दया में बहुत भेद है।
प्रेम में दया है।
लेकिन दया में प्रेम नहीं है।
इसलिए जो हो उसे हमें वैसा ही जानना चाहिए।
प्रेम तो प्रेम। दया तो दया।
एक को दूसरा समझना या समझाना व्यर्थ की चिंताओं को जन्म देता है।
प्रेम साधारणतः असंभव हो गया है।
क्योंकि मनुष्य जैसा है, वैसा ही वह प्रेम में नहीं हो सकता है।
प्रेम में होने के लिए मन का पूर्णतया शून्य हो जाना आवश्यक है।
और हम मन से ही प्रेम कर रहे हैं।
इसलिए हमारा प्रेम निम्नतम हो तो काम (एमग) होता है और श्रेष्ठतम हो
तो करुणा (ींवउचेंपवद)
लेकिन प्रेम काम और करुणा दोनों की प्रतिक्रमण है।
इसलिए जो है उसे समझें।
और जो होने चाहिए, उसके लिए प्रयास न करें।
जो है, उसकी स्वीकृति और समझ से, जो होना चाहिए, उसका जन्म होता है।
लीना को प्रेम टूकन को आशीष।

रजनीश के प्रणाम

15-2-1970
(प्रतिः डा. एम. आर. गौतम, अध्यक्षः संगीत विभाग हिंदू विश्वविद्यालय, बनारस (उ. प्र.)

56/ सर्व स्वीकार है द्वार प्रभु का

मेरे प्रिय,
प्रेम। आपका पत्र मिला है।
मन को शांत करने के उपद्रव में न पड़ें।
वह उपद्रव ही अशांति है।
मन जैसा है--है।

उसे वैसा ही स्वीकार करें।
उस स्वीकृति से ही शांति फलित होती है।
अस्वीकार है अशांति।
स्वीकार है शांति।
और जो सर्व स्वीकार को उपलब्ध हो जाता है, वह प्रभु को उपलब्ध हो जाता है।
अन्यथा मार्ग ही नहीं है।
इसे ठीक से समझ लें।
क्योंकि, वह समझ (न्नदकमतेजंदकपदह) ही स्वीकृति लाती है।
स्वीकृति हमारा संकल्प (रूपसस) नहीं है।
संकल्प मात्र अस्वीकृति है।
जो मैं करता हूं उसमें स्वीकार छिपा ही है।
क्योंकि संकल्प है अहंकार।
और अहंकार अस्वीकार के भोजन के बिना नहीं जी सकता है।
इसलिए, स्वीकार किया नहीं जाता है।
जीवन की समझ स्वीकार ले आती है।
देखें--जीवन को देखें।
जो है--है।
जैसा है, वैसा है।
वस्तुएं ऐसी ही हैं ( )
अन्यथा न चाहें; क्योंकि चाहें तो भी अन्यथा नहीं हो सकता है।
चाह बड़ी नपुंसक है।
आह! और जहां चाह नहीं है, क्या वहां अशांति है?
लीना को प्रेम।
टूकन को आशीष।

रजनीश के प्रणाम
16-2-1970

(प्रतिः डाक्टर एम. आर. गौतम, बनारस)

57/ सोचना नहीं। देखना--बस देखना

मेरे प्रिय,
प्रेम।
स्वयं से लड़ें न।
जैसे हैं--हैं।
बदलने की चेष्टा न करें।
जीवन में तैरें नहीं--बहें; जैसे सरिता में सूखा पत्ता।
साधना से बचें।
साधना मात्र से।
बस यही साधना है?
जाना कहां है।
होना क्या है?
पाना किसे हैं?
जो है--वह अभी है, यहीं है।
कृपया रुकें और देखें।
कि प्रकृति को पशु प्रकृति कहते हैं? क्या है निम्न?
जो है--है।
न कुछ नीचा है, न कुछ ऊंचा है।

क्या है पाशविक?
क्या है दिव्य?
इसलिए न निंदा करें, न प्रशंसा।
न स्वयं को कोसें और न स्वयं की पीठ थपथपाएं।
सब भेद विचार के हैं।
सत्य में भेद नहीं है।
वहां प्रभु और पशु एक है।
स्वर्ग और नर्क एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
संसार और मोक्ष एक ही अज्ञात को कहने के दो ढंग है।
और मेरी बातों को सोचना मत।
सोचा कि चूके।
देखना--बस देखना।

रजनीश के प्रणाम

(प्रतिः स्वामी मोहन चैतन्य, मोगा, पंजाब)

58/ विरह, प्यास, पुकार और आंसू

मेरे प्रिय,
प्रेम। विरह शुभ है। प्यास शुभ है। पुकार शुभ है।
क्योंकि आसुओं के मार्ग से ही तो उसका आगमन होता है।
रोओ, लेकिन इतना कि रोना ही बचे और तुम न बचो।
रोने वाला मिट जाए और बस रोना ही बच रहे तो मंजिल स्वयं ही द्वार पर आ जाती है।
इसलिए ही रोका नहीं था और जाने दिया था।
जानता था कि पछताओगे।
लेकिन पछताने का मूल्य है।
जानता था कि रोओगे।
लेकिन रोने का उपयोग है।
आंसुओं से ज्यादा गहरी प्रार्थना और क्या है? रवि को प्रेम।
ओम को प्रेम।
कंचन और मधु को प्रेम।

रजनीश के प्रणाम

(प्रतिः श्री सरदारीलाल सहगल, अमृतसर, पंजाब)

59/ दस जीवन सूत्र

प्रिय रामचंद्र,
प्रेम! मेरी दस आज्ञाएं पूछी हैं।
बड़ी कठिन बात है।
क्योंकि, मैं तो किसी भी भांति की आज्ञाओं के विरोध में हूं।
फिर भी, एक खेल रहेगा इसलिए लिखता हूंः

1. किसी की आज्ञा कभी मत मानो जब तक कि वह स्वयं की ही आज्ञा न हो।
2. जीवन के अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं है।
3. सत्य स्वयं में है, इसलिए उसे और कहीं मत खोजना।

4. प्रेम प्रार्थना है।
5. शून्य होना सत्य का द्वार है। शून्यता ही साधना है, साध्य है, सिद्धि है।
6. जीवन है अभी और यहीं।
7. जीओ और जागे हुए।
8. तैरो मत, बहो।
9. मरो प्रतिपल ताकि प्रतिपल नये हो सको।
10. खोजो मत। जो है, है। रुको और देखो।

रजनीश के प्रणाम
8-4-1970

(प्रतिः डाक्टर रामचंद्र प्रसाद, पटना विश्वविद्यालय, पटना)

60/ सत्य को जीतने की कलाः सब भांति हार जाना

मेरे प्रिय,
प्रेम। जल्दी न करें।
कभी-कभी जल्दी ही देरी बन जाती है।
प्यास के साथ प्रतीक्षा भी जोड़ें।
जितनी गहरी प्रतीक्षा हो, उतनी ही शीघ्रता होती है।
बीज बो दिया है, अब छाया में बैठे और देखें कि क्या होता है।
बीज टूटेगा, अंकुर भी बनेगा, लेकिन जल्दी तो नहीं की जा सकती है।
प्रत्येक बात के लिए समय भी तो चाहिए न?
श्रम करें जरूर लेकिन फल परमात्मा पर छोड़ दें।
जीवन में कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता है।
और सत्य की ओर उठाया हुआ कदम तो कभी भी नहीं। लेकिन कभी-कभी अधैर्य जरूर बाधा बन जाता है।
प्यास के साथ वह आता भी है।
लेकिन, प्यास को बचा लें और उसे विदा दे दें।
प्यास और अधैर्य को एक समझने की भूल न करें।
प्यास में खोज है लेकिन दौड़ नहीं है।
अधैर्य में दौड़ है लेकिन खोज नहीं है।
प्यास में बाट है लेकिन मांग नहीं।
अधैर्य में मांग है लेकिन बाट नहीं।
प्यास में शांत रुदन है।
अधैर्य मग अशांत छीना झपटी है।
और सत्य के लिए आक्रमण नहीं किया जा सकता है।
वह मिलता है, लड़ने से नहीं, हारने से।
उसे जीतने की कला बस भांति हार जाना ही है।
मधु को प्रेम।

रजनीश के प्रणाम
11-4-70

(प्रतिः श्री बाबूभाई शाह, संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात)

61/ मृत्यु का बोध

प्रिय मथुरा बाबू,

प्रेम। आपका पत्र मिला है।
यह जानकर आनंदित हूं कि मां की मृत्यु से आपको स्वयं की मृत्यु का ख्याल आया है।
मृत्यु के बोध में से ही अमृत की उपलब्धि की संभावना है।
मृत्यु की चोप सदा गहरी है लेकिन मनुष्य का मन चालाक है और उसे भी टाला जाता है।
आप टालना मत।
स्वयं को समझना मत।
किसी भी भांति की सांत्वना आत्मघात है।
मृत्यु के घाव को ठीक से बनने देना।
जागना और उस घाव के साथ जीना।
कठिन होगा यह जीना।
लेकिन, कठिनाई के बिना क्रांति भी तो नहीं है।
मृत्यु है।
सदा साथ है।
लेकिन, हम उसे विस्मरण किए रहते हैं।
मृत्यु रोज है।
प्रतिपल है।
लेकिन, हम उसके प्रति बेहोश बने रहते हैं।
और इस कारण ही हमें इस जीवन का भी कोई पता नहीं चलता है।
मृत्यु से बचने में मनुष्य जीवन से भी चूक जाता है।
क्योंकि वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
क्योंकि वह दोनों एक ही गाड़ी के दो चाक हैं।
और जो उन दोनों को ही जान लेता है, उसके लिए वे दोनों एक ही हो जाते हैं।
उस एकता का नाम ही अस्तित्व है।
और उस अस्तित्व में होना ही मुक्ति है।

रजनीश के प्रणाम
11-2-1970

(प्रतिः श्री मथुरा प्रसाद मिश्र, पटना, बिहार)

62/ अर्थ (उमंदपदह) की खोज

मेरे प्रिय,
प्रेम। अर्थ (उमंदपदह) की खोज ही अनर्थ है।
अर्थ की खोज ने ही अर्थहीनता (उमंदपदहसमेदमे) तक पहुंचा दिया है।
अर्थ नहीं है, ऐसा जो जान लेता है वह परम अर्थ को उपलब्ध हो जाता है।
क्योंकि फिर अर्थहीनता संभव ही नहीं है।
और अनर्थ भी।
फिर तो जो है अर्थ ही है।
या, नहीं भी है, तब भी भेद नहीं है।
असल में फिर तो जो--है, है। जो नहीं है, नहीं है और अन्यथा का प्रश्न ही नहीं उठता है।
और तुमने पूछा है कि प्रयोजन मुक्त होने की बात जरा खोल कर समझाऊं।
समझोगे तो वह बात कभी भी खुल न पाएगी।
क्योंकि समझने की संभावना प्रयोजन के साथ है!
समझने में लगते ही क्यों हो?
और देखो--बात खुल कर सामने खड़ी है न?
सब खुला है और साफ है।
लेकिन, मनुष्य समझने में लगा है।

फिर, वह जो सामने है और साफ है, उसे देखे कौन? समझने की चेष्टा में ही उलझाव है।
जानने की चेष्टा में ही अज्ञान है।
न समझो... न जानो।
फिर वह छिपेगा ही कैसे जो कि--है (ैंंज--रूपबी--टे)? सत्य सदा निर्वस्त्र है, सामने है, साफ है।
रजनीश के प्रणाम
8-4-70
प्रतिः श्री पुष्पराज शर्मा, शिमला

63/ जाग कर देखें--मैं है ही नहीं

प्रिय माया जी,
प्रेम। आपका पत्र पाकर आनंदित हूं।
मैं को छोड़ना नहीं है।
क्योंकि, जो है ही नहीं, उसको छोड़िएगा कैसे?
मैं को समझना है--खोजना है।
वैसे ही जैसे कोई प्रकाश लेकर अंधकार को खोजे और अंधकार खो जाए।
अंधकार मिटाया नहीं जा सकता है, क्योंकि वह है ही नहीं है।
बस प्रकाश ही जलाया जा सकता है।
हां--प्रकाश के आते ही पाया जाता है कि अंधकार नहीं है।
ऐसे ही विचारों से भी न लड़ें।
निर्विचार होने का प्रयास करना भी विचार ही है।
विचारों के प्रति जागें--सचेत हों--साक्षी बनें।
और फिर वे अनायास ही शांत हो जाते हैं।
साक्षी भाव अंततः शून्य में उतार देता है।
और जहां शून्य है, वहीं पूर्ण है।

रजनीश के प्रणाम
8-4-70

(प्रतिः श्रीमती मायादेवी जैन, चंडीगढ़, पंजाब)

64/ खोज--खोज--और खोज

प्यारी कुसुम,
प्रेम।
खोज--खोज--और खोज।
इतना कि अंततः खोजते-खोजते स्वयं ही खो जावें।
बस वही बिंदु उसके मिलन का है।
इधर मैं मिटा, उधर वह हुआ।
मैं के अतिरिक्त और कोई दीवार न कभी थी, न है।
कपिल को प्रेम।
असंग को आशीष।

रजनीश के प्रणाम
8-4-70

65/ अंतर्वीणा

मेरे प्रिय,
प्रेम।
काश! वीणा बाहर होती तो संगीत भी सुना जा सकता था!
लेकिन, वीणा भीतर है, इसलिए संगीत सुना नहीं जा सकता है।
हां--संगीत हुआ जरूर जा सकता है।
और, वह संगीत भी क्या जो सुनने पर ही समाप्त हो जाए?
फिर, वीणा वादक, वीणा, संगीत और श्रोता भिन्न भी तो नहीं हैं।
झांको भीतर पहुंचो भीतर।
और देखो--यह कौन वहां तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

रजनीश के प्रणाम
8-4-70

(प्रतिः श्री जयंतीलाल पी. व्यास, उदयपुर)

66/ सपनेः बंद व खुली आंखों के

प्यारी गुणा,
प्रेम।
स्वप्न भी सत्य है।
क्योंकि, जिसे हम सत्य कहते हैं, वह भी स्वप्न से ज्यादा कहां है? खुली और बंद आंख से ज्यादा अंतर भी क्या है।
इस बात को ठीक से समझ ले।
क्योंकि तब दोनों के ही पार उठा जा सकता है।
और दोनों के पार ही मार्ग है।
क्योंकि, दोनों दर्शन हैं और दोनों के पार वह है जो कि द्रष्टा है।
ईश्वर बाबू को प्रेम।
बच्चों को आशीष।

रजनीश के प्रणाम
8-4-70

(प्रतिः सुश्री गुणा शाह, बंबई)

67/ समाधान की खोज

प्यारी रेखा,
प्रेम। तेरा पत्र मिला है।
उसमें तूने इतने प्रश्न पूछे हैं, कि उत्तर के लिए मुझे महाभारत से भी बड़ी किताब लिखनी पड़ेगी।
और फिर भी तुझे उत्तर नहीं मिलेंगे।
क्योंकि, कुछ प्रश्न ऐसे हैं, जिनके उत्तर दूसरे से मिल ही नहीं सकते हैं।
उनके उत्तर तो स्वयं के जीवन से ही खोजने पड़ते हैं।
और कुछ प्रश्न ऐसे हैं कि जिनके उत्तर हैं ही हनीं।
क्योंकि वे प्रश्न ही गलत हैं।
ऐसे प्रश्नों के उत्तर कभी नहीं मिलते हैं।
हां--खोजते-खोजते अंततः प्रश्न जरूर गिर जाते हैं।

और कुछ प्रश्न ऐसे हैं, जो प्रश्न तो सही हैं, लेकिन उनके उत्तर नहीं हैं।
उन्हें तो अंतस में गहरे उतर कर ही जाना जा सकता है।

रजनीश के प्रणाम
8-4-70

(प्रतिः कुमारी रेखा गिरधरदास, राजकोट, गुजरात)

68/ सत्य है सदा सूली पर

प्यारी जयति,
प्रेम। तेरा पत्र मिला है।
पगली! मेरे लिए कभी भी, भूल कर भी चिंतित मत होना।
दो कारणों सेः
एक तो प्रभु के हाथों में जिस दिन से स्वयं को सौंपा है, उसी दिन से सब चिंताओं के पार हो गया हूं।
असल में, स्वयं को ही सम्हाल ने के अतिरिक्त और कोई चिंता ही हनीं है।
अहंकार ही चिंता है।
उसके पार तो कैसी चिंता--किसको चिंता--किसकी चिंता?
दूसरे मेरे जैसे व्यक्ति सूली चढ़ने को ही पैदा होते हैं।
वही हमारा सिंहासन है।
फूल नहीं--पत्थर बरसें तभी हमारा कार्य हो पाता है।
लेकिन, प्रभु के मार्ग पर पत्थर भी फूल अंततः पत्थर सिद्ध होते हैं।
इसलिए, जब मुझ पर पत्थर बरसें तब खुश होना और प्रभु को धन्यवाद देना।
सत्य का सदा ही, ऐसा ही स्वागत होता है।
न माने मन तो पूछ सुकरात से?
जीसस से?
कबीर से?
मीरा से?
सबको प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
10-6-70

(प्रतिः सुश्री जयवंती, जूनागढ़)

69/ अटूट संकल्प

मेरे प्रिय,
प्रेम। ध्यान के जल स्रोत निकट ही हैं।
लेकिन दमित काम की पर्ते चट्टानों का काम कर रही हैं।
काम का दमन ही आपके जीवन को क्रोध से भी भर गया है।
क्रोध का धुआं भी व्यक्तित्व के रोए-रोए में है।
उस दिन जब आप मेरे सामने ध्यान में गए तब यह सब स्पष्ट दिखाई पड़ा।
लेकिन यह भी दिखाई पड़ा कि आपका संकल्प भी प्रबल है।
अभीप्सा भी प्रबल है।
श्रम भी प्रबल है।
इसीलिए, निराशा का कोई भी कारण नहीं है।

कठिनाइयां हैं, चट्टानें हैं, लेकिन वे टूट सकेंगी क्योंकि उन्हें तोड़ने वाला अभी टूट नहीं गया है।
श्रम करें ध्यान के लिए समग्रता से।
शीघ्र ही जल स्रोत उपलब्ध होंगे।
लेकिन, दाव पर स्वयं को पूरा ही लगाना होगा।
रत्ती भर कम से भी नहीं चलेगा।
जरा सी कमी और सब चूक सकता है।
समय कम है, इसलिए शक्ति सघन करनी होगी।
अवसर खो न जाए इसलिए संकल्प पूर्ण करना होगा।
ऐसा अवसर दुबारा किस जन्म में मिलेगा कहना कठिन है।
इसलिए, इस जन्म में ही सब पूर्ण कर लेना है
द्वार व खुले तो फिर दूसरे जन्म में सब प्रारंभ से ही शुरू करना होता है।
फिर भी मेरा साथ भी निश्चित नहीं है।
पिछले जन्म में भी आपने श्रम किया था, लेकिन वह अधूरा रह गया था।
उसके पहले भी ऐसा ही हुआ था।
विगत तीन जन्मों से आप एक ही वृत्त को पुनरुक्त कर रहे है।
अब इस वृत्त को तोड़ ही डालें।
बहुत देर तो वैसे ही गई है।
अब और देर उचित नहीं है।
वहां सबको मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
10-6-70

(प्रतिः लाला सुंदरलाल, दिल्ली)

70/ मुक्ति का संगीत

प्यारी जयति,
प्रेम। प्रभु के मंदिर में नाचते-गाते, आनंद मनाते ही प्रवेश होता है।
उदास चित्त की वहां कोई गति नहीं है।
इसलिए, उदासी से बच।
चित्त को रंगों से भर।
मयूर के पंखों जैसा चित्त चाहिए।
और अकारण।
जो कारण से आनंदित है, वह आनंदित ही नहीं है।
नाच और गा।
किसी के लिए नहीं।
किसी प्रयोजन से नहीं।
नाचने के लिए ही नाच।
गाने के लिए ही गा।
और तब सारा जीवन ही दिव्य हो जाता है।
ऐसा जीवन ही प्रभु की प्रार्थना है।
ऐसा होना ही मुक्ति है।
डाक्टर को प्रेम।
डाक्टर का पत्र मिल गया है।

रजनीश के प्रणाम
25-10-1970

(प्रतिः श्री जयति शुक्ला, द्वारा डाक्टर हेमंत पी. शुक्ला, अनवर स्ट्रीट, काठियावाड, जूनागढ़ (गुजरात)

71/ प्रेम की आग

प्रिय जयति,
प्रेम। प्रभु सब भांति निखारता है।
शुद्ध होने के लिए, स्वर्ण को ही नहीं, मनुष्य को भी अग्नि में से गुजरना पड़ता है।
प्रेम की पीड़ा ही मनुष्य के लिए अग्नि है।
और, सौभाग्य से ही प्रेम की आग मनुष्य के जीवन में उतरती है।
जन्म-जन्म की अनंत प्रार्थनाओं का वह फल है।
सघन हो गई प्यास ही अंततः प्रेम बनती है।
लेकिन, बहुत कम हैं जो कि उसका स्वागत कर पाते हैं।
क्योंकि, बहुत कम हैं जो कि प्रेम को पीड़ा के रूप में पहचान पाते हैं।
प्रेम सिंहासन नहीं, सूली है।
यद्यपि जो उस सूली पर हंसते हुए चढ़ते हैं, वे सिंहासन को उपलब्ध हो जाते हैं।
सूली तो दिखाई पड़ती है, सिंहासन दिखाई नहीं पड़ता है।
वह सदा सूली की ओट में छिपा होता है।
एक क्षण को तो जीसस तक से भूल हो गई थी।
उनके प्राणों तक से निकल गया थाः हे परमात्मा! यह क्या दिखला रहा है? लेकिन, नहीं फिर उन्हें तत्काल ही स्मरण आ गया और उन्होंने कहा थाः जो तेरी मर्जी!
बस फिर तो सूली सिंहासन हो गई थी और मृत्यु नव-जन्म।
क्रांति के इसी क्षण में--उपरोक्त दो वाक्यों के बीच--जीसस में क्राइस्ट का जन्म हो गया था।
पीड़ा घिर गई है, अब जन्म निकट है।
प्रसन्न हो, अनुगृहीत हो।
मृत्यु को देख भय न कर--धन्यवाद दे।
वह नव जन्म की सूचना है।
पुराने को मिटना पड़ेगा--नये के होने के लिए।
बीज को टूटना पड़ता है अंकुर के लिए।
डाक्टर को प्रेम।

रजनीश के प्रणाम
13-11-1970

(प्रतिः श्रीमती जयवंती शुक्ल, जूनागढ़, गुजरात)

72/ विचारों की चरम सीमा

मेरे प्रिय,
प्रेम। विचार ही मनुष्य की शक्ति है।
और वही विश्वास ने उससे छीन ली है।
मनुष्य इसीलिए दीन-हीन और निर्वीर्य हो गया है।
खूब विचार करो।
अथक विचार करो।
और आश्चर्य तो यह है कि विचारों की चरम सीमा पर ही निर्विचार दशा उपलब्ध होती हैं।

वह विचार की पूर्णता है।
और इसलिए उस दशा में विचार भी व्यर्थ सिद्ध होता हैं।
उस शून्य में ही सत्य होता है।

रजनीश के प्रणाम

(प्रतिः श्री प्रेमशंकर पांडे, मनमाड़ (महाराष्ट्र)

73/ खोजो मत--खाओ

प्रिय सत्यानंद,
प्रेम। मेरे शुभाशीष।
सत्य में जियो--क्योंकि सत्य को जानने का कोई उपाय नहीं है।
सत्य ही हो जाओ--क्योंकि सत्य केवल सत्य होकर ही जाना जा सकता है।
शब्द से सत्य नहीं मिलता है।
न शास्त्र से।
न चिंतन, अध्ययन या मनन से ही।
सत्य है स्वयं में--स्वयं की शून्यता में।
निर्विचार में, निर्विषय चित्त में।
चेतना ही है जहां केवल--वहीं सत्य का उदघाटन है।
सत्य तो है ही।
उसे पाना नहीं है।
बस, अनावृत ही करना है।
और वह जिस स्वर्ण पात्र से ढंका है, वह हमारा ही अहंकार है।
अहंकार है अंधकार।
मिटो और आलोक हो जाओ।
और जहां अहंकार का अंधकार नहीं है, वहीं उस शून्यलोक में सत्य है।
वही सत्य है।
वही आनंद है।
वही अमृत है।
उसे खोज मत--वरन उसके लिए खो जाओ और उसे पा लो

रजनीश के प्रणाम
12-11-1970

(प्रतिः योग सत्यानंद, टीकमगढ़ (म. प्र.)

74/ वाणी रहित, मांग रहित स्वयं का समर्पण

प्रिय, ललिता,
प्रेम।
प्राण जिसे खोजते हैं, उसे पा ही लेते हैं।
विचार ही सघन होकर वस्तु बन जाते हैं।
सरिता जैसे सागर खोज लेती है, ऐसे ही प्यासे प्राणों को प्रभु का मंदिर भी मिल जाता है।
बस प्रबल प्यास चाहिए।
बस अथक संकल्प चाहिए।
बस अनंत प्रतीक्षा चाहिए।
बस पूर्ण पुकार चाहिए।

और यह सब--प्यास, संकल्प, प्रतीक्षा, पुकार--एक छोटे से शब्द में समा जाता है।
वह शब्द है--प्रार्थना।
किंतु, प्रार्थना की नहीं जाती है।
वह कृत्य नहीं है।
उसमें तो हुआ जाता है।
वह भाव है।
वह आत्मा है।
वह मूक--वाणी रहित, मांग रहित स्वयं का समर्पण है।
छोड़ दो स्वयं को अज्ञात के हाथों में।
और जो हों उसे स्वीकारो।
वह बनाए तो बनो।
वह मिटाए तो मिटो।

रजनीश के प्रणाम
12-11-1970

(प्रतिः कुमारी ललिता राठोर, चंद्रावतीगंज, फतेहाबाद म. प्र.)

75/ प्राणों के गीत।

मेरे प्रिय,
प्रेम। सुबह सूर्योदय के स्वागत में जैसे पक्षी गीत गाते हैं--ऐसे ही ध्यानोंदय के पूर्व भी मन प्राण में अनेक गीतों का जन्म होता है।
बसंत में जैसे फूल खिलते हैं, ऐसे ही ध्यान के आगमन पर अनेक-अनेक सुगंधें आत्मा को घेर लेती हैं।
और वर्षा में जैसे सब ओर हरियाली छा जाती हैं, ऐसे ही ध्यान की वर्षा में भी चेतना नाना रंगों से भर उठती है।
यह सब और बहुत कुछ भी होता है।
लेकिन, यह अंत नहीं, बस आरंभ ही है।
अंततः तो सब खो जाता है।
रंग, गंध, आलोक, नाद--सभी विलीन हो जाते हैं।
आकाश जैसा अंतआकाश () उदित होता है।
शून्य, निर्गुण, निराकार।
उसकी करो प्रतीक्षा,
उसकी करो अभीप्सा।
लक्षण शुभ हैं, इसलिए एक क्षण भी व्यर्थ न खोओ और आगे बढ़ो, मैं तो साथ हूं ही।

रजनीश के प्रणाम
16-11-1970

(प्रतिः श्री राजेंद्र आर. अंजारिया, बांबे ब्लाक्स, मणिनगर, अहमदाबाद)

76/ पहले खोजो प्रभु का राज्य

मेरे प्रिय,
प्रेम। प्रभु का काम ही मेरा काम है।
उसके अतिरिक्त न मैं हूं, न कुछ मेरा है, और न कोई काम ही है।

प्रभु में जीओ--बस, फिर शेष सब अपने आप ही हो जाते है।
जीसस ने कहा हैः seek ye first the kingdom of God, and all else shall be added unto you.
(पहले खोजो प्रभु का राज्य; और फिर शेष सब अपने आप ही आ जाता है।
यही मैं भी कहता हूं
लेकिन, मनुष्य का मन पहले और सब कुछ खोजता है।
फिर वही होता है, जो हो सकता है।
और कुछ तो मिलता ही नहीं--विपरीत, पास जो होता है, वह भी खो जाता है।

रजनीश के प्रणाम
16-11-1970

(प्रतिः श्री केदार सिंहल, श्री रामकृष्ण सेवा मिशन, 319, घंटाघर, नीमच, म. प्र.)

77/ जीवन को नृत्य बना

प्यारी नीलम,
प्रेम। जीवन का प्रयोजन न खोज।
वरन जी--पूरे हृदय से।
जीवन को गंभीरता मत बना।
नृत्य बना।
सागर की लहरें जैसे नाचती हैं, ऐसे ही नाच।
फूल जैसे खिलते हैं, ऐसे ही खिल।
पक्षी जैसे गीत गाते हैं, ऐसे ही गा।
निष्प्रयोजन--अकारण।
और फिर सब प्रयोजन प्रकट हो जाता है।
और फिर सब रहस्य अनावृत्त हो जाते हैं।
प्रसिद्ध आस्ट्रिन चिकित्सक रोकिटान्सकी ने एक बार किसी विद्यार्थी
से पूछाः
जीवन का प्रयोजन क्या है। जीवन का अर्थ क्या है?
वह विद्यार्थी एक क्षण लड़खड़ाया और फिर कुछ याद करता सा बोलाः महोदय!
कल तक मुझे याद था, लेकिन अभी मैं बिल्कुल ही याद नहीं कर पा रहा हूं। रोकिटान्सकी ने आकाश की ओर देख कर कहाः हे परमात्मा! एक ही व्यक्ति को
तो केवल पता था और वह भी भूल गया है। (फद्धक पद भमंअमद! ऊंद रूव मअमत ज्ञदमू-- वितहवजजमद!)
परिवार में सबको प्रेम

रजनीश के प्रणाम
16-11-70

78/ जहां शिकायत नहीं है, वहीं प्रार्थना है

मेरे प्रिय,
प्रेम। स्व को समर्पित करने के बाद न कोई कष्ट है, न कोई दुख है।
क्योंकि, मूलतः स्व ही समस्त दुखों का आधार हैं।
और फिर जिस क्षण से जाना जाता है कि प्रभु ही सब कुछ है, इसी क्षण से शिकायत का उपाय नहीं रह जाता है।
और जहां शिकायत नहीं है, वहीं प्रार्थना है।
वहीं अनुग्रह का भाव है।

वहीं आस्तिकता है।
और इस आस्तिकता में ही उसका प्रसाद बरसता है।
बनो आस्तिक और जानो।
लेकिन आस्तिक बनना सर्वाधिक कठिन है।
जीवन को उसकी समग्रता में स्वीकार करने से बड़ी और कोई तपश्चर्या नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
16-11-1970

(प्रतिः श्री सरदारी लाल सहगल, न्यू मिश्री बाजार, अमृतसर, पंजाब)

79/ आंखें खोलो और देखो

प्यारी कुसुम,
प्रेम। संसार है निर्वाण।
ध्वनि मात्र है मंत्र।
और, प्राणि मात्र परमात्मा।
बस, सब कुछ स्वयं की दृष्टि पर निर्भर है।
दृष्टि के अतिरिक्त सृष्टि और कुछ भी नहीं है।
देखो--आंखों खोलो और देखो।
अंधकार कहां है?
आलोक ही है।
मृत्यु कहां है?
अमृतत्व ही है।
कपिल को प्रेम।
असंग को आशीष।

रजनीश के प्रणाम
17-11-1970

(प्रतिः सुश्री कुसुम, द्वारा--श्री कपिल मोहन चांघोक, 90 ए, इंडस्ट्रियल एरिया, क्वालिटी आइसक्रीम कंपनी, ओसवाल रोड, लुधियाना, पंजाब)

80/ समर्पण है द्वार

प्यारी सावित्री,
प्रेम। ध्यान में फलाकांक्षा न रखो।
उससे बाधाएं निर्मित होती हैं।
ध्यान के किसी अनुभव की पुनरुक्ति भी न चाहो।
उससे अकारण ही विध्न होता है।
बस, ध्यान में ध्यान के अतिरिक्त और कुछ भी न हो, इसका ध्यान रखो।
फिर शेष सब अपने आप ही हो जाता है।
प्रभु के हाथों में छोड़ो स्वयं को।
अनंत की यात्रा अपने ही हाथों से होनी असंभव है।
समर्पण--समर्पण समर्पण।
समर्पण को स्मरण रखो।
सोते-जागते, सदा ही।
समर्पण के अतिरिक्त उसका और कोई द्वार नहीं है।

शून्य के अतिरिक्त उसकी और कोई नाव नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
17-11-1970

(प्रतिः डाक्टर सावित्री सी. पटेल, मोहनलाल डी. प्रसूतिगृह, पोस्ट किल्ला पारडी, बुलसार, गुजरात)

81/ जीवन में इतना दुख क्यों है?

मेरे प्रिय,
प्रेम।
मनुष्य के जीवन में इतना दुख क्यों है?
क्योंकि, उसके जीवन में स्वरों की तो भीड़ है,
लेकिन, स्वर शून्यता बिल्कुल नहीं है।
क्योंकि, उसके जीवन में विचारों का शोरगुल तो बहुत है, लेकिन, निर्विचार का मौन बिल्कुल नहीं है।
क्योंकि, उसके जीवन में भावनाओं का क्षोभ तो बहुत है, लेकिन, निर्भाव की समता बिल्कुल नहीं है।
क्योंकि, अदिशा में ठहराव बिल्कुल नहीं है।
और, अंततः क्योंकि, उसके जीवन में वह तो अतिशय है,
लेकिन परमात्मा बिल्कुल नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
1-4-1970

(प्रतिः श्री शिव, जबलपुर)

82/ संदेह नहीं तो खोज कैसे होगी?

मेरे प्रिय,
प्रेम। संदेह नहीं तो खोज कैसे होगी?
संदेह नहीं तो प्राण सत्य को जानने और पाने को आकुल कैसे होंगे? ध्यान रहे श्रद्धा और विश्वास बांधते हैं,
संदेह मुक्त करता है।

रजनीश के प्रणाम
15-9-1970

(प्रतिः श्री शिव, जबलपुर)

83/ मिटो ताकि हो सको

मेरे प्रिय,
प्रेम। मैं कहता हूं, मिटो ताकि हो सको।
बीज मिटता है तब वृक्ष बनता है।
बूंद मिटती है तो सागर हो जाती है।
और मनुष्य है कि मिटना ही नहीं चाहता है? फिर परमात्मा प्रकट कैसे हो?

मनुष्य बीज है, परमात्मा वृक्ष है। मनुष्य बूंद है, परमात्मा सागर है।

रजनीश के प्रणाम
25-10-1969

(प्रतिः श्री शिव, जबलपुर)

84/ प्रज्ञा पर ज्ञान की धूलि

मेरे प्रिय,
प्रेम। जीवन है अनंत रहस्य।
इसलिए जो ज्ञान से भरे हैं,
वे जीवन को जानने से वंचित रह जाते हैं। उसे तो जान पाते हैं केवल वे ही
जो कि सरल हैं
और जिनकी प्रज्ञा पर
ज्ञान की धूलि नहीं जमी है।

रजनीश के प्रणाम
3-11-69

(प्रतिः श्री नरेंद्र, जबलपुर)

85/ तैरें नहीं, डूबें

मेरे प्रिय,
प्रेम। सत्य तैरने से नहीं,
डूबने से मिलता है।
तैरना,
सतह पर है।
डूबना
उन गहराइयों में ले जाता है
जिनका कि
कोई अंत नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
7-5-1970

(प्रतिः श्री अरविंद कुमार, जलबपुर)

86/ आंखों का खुला होना ही द्वार है।

प्यारी जयति,
प्रेम। सत्य आकाश की भांति है--अनादि और अनंत और असीम। क्या आकाश में प्रवेश का कोई द्वार है?
तक सत्य में भी कैसे हो सकता है?
पर यदि हमारी आंखें ही बंद हो तो आकाश नहीं है।
और ऐसा ही सत्य के संबंध में भी है।

आंखों का खुला होना ही द्वार है।
और आंखों का बंद होना ही द्वार का बंद होना है।

रजनीश के प्रणाम
20-8-69

(प्रतिः श्री जयवंती शुक्ल , जूनागढ़ , गुजरात)

87/ सत्य की खोज

जयति को सप्रेम ,
सत्य को खोजना कहां है ?
बस--खोजना है स्वयं में।
स्वयं में --स्वयं में --स्वयं में
वह वहां है ही।
और जो उसे कहीं और खोजता है ,
वह उसे खो देता है।

रजनीश के प्रणाम
15-11-69

(प्रतिः सुश्री जयवंती शुक्ल , जूनागढ़ , गुजरात)

88/ प्रतिपल मर जाओ

प्यारी भगवती ,
प्रेम। पुराने की लीक छोड़ो।
लीक पर सिर्फ मुर्दे ही चलते हैं।
जीवन सदा नए की खोज है।
जो निरंतर नया होने की क्षमता रखता है ,
वही ठीक अर्थों में जीवित है।
पुराने के प्रति प्रतिपल मर जाओ ;
ताकि तुम सदा नये हो सको।
जीवन -क्रांति का मूल सूत्र यही है।

रजनीश के प्रणाम
1-7-1969

(प्रतिः सुश्री भगवती एडवानी , बंबई)

89/ अभय आता है साधना से

प्यारी भगवती ,
प्रेम। मनुष्य गुलाम है।
क्योंकि , वह अकेला होने से भयभीत है।
इसीलिए उसे चाहिए भीड़ संप्रदाय , संगठन।
संगठन का आधार भय है।
और भयभीत चित्त सत्य को कैसे जान सकते हैं ?
सत्य के लिए चाहिए अभय।

और अभय आता है साधना से, संगठन से नहीं।
इसीलिए तो धर्म, संप्रदाय, समाज--सभी सत्य के मार्ग में अवरोध हैं।

रजनीश के प्रणाम
19-8-1969

(प्रतिः सुश्री एडवानी, बंबई)

90/ आस्तिकता--स्वीकार है, समर्पण है

प्रिय योग भगवती,
प्रेम। आस्तिकता अनंत आशा का ही दूसरा नाम है।
वह धैर्य।
वह है प्रतीक्षा।
वह है जीवन लीला पर भरोसा।
आस्तिकता में इसलिए शिकायत का उपाय नहीं है।
आस्तिकता स्वीकार है--आस्तिकता समर्पण है।
स्वयं से जो पार है उसका स्वीकार।
स्वयं का जो आधार है उसमें समर्पण।
सन 1914 में टामस अल्बा एडिशन की प्रयोगशाला में आग लग गई; जिसमें लगभग दो करोड़ रुपयों के यंत्र और एडिसन के जीवन भर के शोध कार्य से संबंधित कागज पत्र जल कर राख हो गए।
दुर्घटना की खबर पाकर एडिसन का पुत्र चार्ल्स जब ढूंढता हुआ पास उनके पहुंचा तो उसने उन्हें बड़े आनंद से एक जगह खड़े होकर उस आग को देखते हुए पाया।
चार्ल्स को देख कर एडिसन ने उससे पूछाः तुम्हारी मां कहां है? उसे ढूंढो और फौरन यहां लाओ। ऐसा दृश्य वह फिर कभी न देख पाएगी!
अगले दिन सुबह अपनी आशाओं और सपनों की राख में घूमते हुए उस 67 वर्षीय आविष्कार ने कहाः तबाही का भी कैसा लाभ है! हमारी सबकी सब गल्तियां जल कर राख हो गई हैं! ईश्वर का शुक्र है कि अब हम नए सिरे से अपना काम शुरू कर सकते हैं।
प्रभु कृपा का अंत नहीं है,
बस उसे देखने वाली आंखें भर चाहिए।

रजनीश के प्रणाम
14-10-70

(प्रतिः मा योग भगवती, बंबई)

91/ परमात्मा ही हमारी संपदा है

प्रिय योग भगवती,
प्रेम। परमात्मा ही हमारी संपदा है।
और किसी संपदा का भरोसा न करना।
शेष सब संपत्तियां अंततः विपत्तियां ही सिद्ध होती हैं।
संत टेरेसा एक बहुत बड़ा अनाथालय खोलना चाहती थी, मगर उसके पास उस समय सिर्फ तीन शिलिंग ही थे। वह अत्यल्प पूंजी से उस विराट कार्य को शुरू करना चाहती थी।
मित्रों ने, भक्तों ने उसे सलाह दी--पहले पर्याप्त पूंजी जमा कर लीजिए, मला तीन शिलिंग से क्या काम हो सकता है?

लेकिन, टेरेसा ने हंस कर सिर्फ इतना ही उत्तर दियाः बेशक तीन शिलिंग
से टेरेसा कुछ नहीं कर सकती, लेकिन ईश्वर और तीन शिलिंग के पास रहते कोई काम असंभव नहीं है?

रजनीश के प्रणाम
6-11-1970

(प्रतिः मां योग भगवती, बंबई)

92/ मैं समस्त से एक हूं

मेरे प्रिय,
प्रेम। मैं समस्त से एक हूं।
सौंदर्य से भी।
और कुरूपता में भी।
क्योंकि, जो भी है, वह मेरे बिना नहीं है।
पुष्पों में ही नहीं, पापों में भी मेरी भागीदारी है।
और केवल स्वर्ग ही नहीं, नरक भी मेरे ही हैं।
बुद्ध, जीसस और लाओत्से--
आह! उनका वसीयतदार होना कितना आसान है।
लेकिन, चंगीज, तैमूर और हिटलर?
वे भी तो मेरे ही भीतर है।
नहीं, नहीं--आधी नहीं, पूरी मनुष्यता ही मैं हूं।
मनुष्यों का सब कुछ मेरा है।
फूल भी, कांटे भी।
आलोक भी, अंधकार भी।
अमृत मेरा है, तो फिर विष कौन पीएगा?
अमृत के साथ विष भी मेरा है,
ऐसा जो अनुभव करता है,
उसे ही मैं धार्मिक कहता हूं।
क्योंकि
ऐसे अनुभव की पीड़ा ही,
पृथ्वी के जीवन में क्रांति ला सकती है।

रजनीश के प्रणाम
20-12-69

(प्रतिः सुश्री लक्ष्मी, बंबई)

93/ सत्य शब्दातीत है

प्रिय योग लक्ष्मी,
प्रेम। विटगिंस्टीन ने कहीं कहा हैः जो न कहा जा सके, उसे नहीं कहना चाहिए। (दवज इमेंपक, दवज इमेंपक)
काश! यह बात मानी जा सकती तो सत्य के संबंध में व्यर्थ के विवाद न होते।
क्योंकि, जो है (ैंंज रूपबी टे) उसे कहा नहीं जा सकता है।
या, जो भी कहा जा सकता है, वह वही नहीं है, नहीं हो सकता है जो कि है।
सत्य शब्दातीत है।
इसलिए, सत्य के संबंध में मौन ही उचित है।

पर मौन अति कठिन है।
मन उसे भी कहना चाहता है, जिस कि कहा नहीं जा सकता है।
असल में मन ही मौन में बाधा है।
मौन अ-मन (छव ऊपदक) की अवस्था है।
एक उपदेशक छोटे बच्चों में बोलने के लिए आया था।
उसने बोलना शुरू करने के पहले बच्चों से पूछाः इतने होशियार बच्चे और बच्चियों के समक्ष जो कि तुमसे एक अच्छे भाषण की अपेक्षा रखते हैं, तुम क्या बोलोगे यदि तुम्हारे पास बोलने को कुछ भी न हो?
एक छोटे से बच्चे ने कहाः मैं मौन रहूंगा (रुनपमज)
मैं मौन रहूंगा--इस सत्य के प्रयोग के लिए एक छोटे बच्चे जैसी सरलता आवश्यक है।

रजनीश के प्रणाम
5-9-1970

(प्रतिः मां योग लक्ष्मी, बंबई)

94/ मनुष्य भी बीज है

प्यारी योग लक्ष्मी,
प्रेम। बीज ही बीज नहीं है।
मनुष्य भी बीज है।
बीज ही अंकुरित नहीं होते हैं।
मनुष्य भी अंकुरित होते हैं।
बीज ही फूल नहीं बनते हैं।
मनुष्य भी फूल बनते हैं।
और धर्म मनुष्यता के बीजों को फूल बनाने का विज्ञान है।

रजनीश के प्रणाम
22-9-1970

(प्रतिः मा योग लक्ष्मी, बंबई)

95/ न दमन, न निषेध, वरन जागरण

प्रिय योग लक्ष्मी,
प्रेम। दमन आकर्षक बन जाता है।
और निषेध निमंत्रण।
चित्त के प्रति जागने में ही मुक्ति है।
निषेध निरोध नहीं है।
निषेध तो बुलावा है।
और जैसे जीभ टूटे दांत के पास बार-बार लौटने लगती है, ऐसे ही मन भी जहां से रोक जाए वहीं वहीं चक्कर काटने लगता है।
एक बार लंदन के एक साधारण से दुकानदार ने सारे लंदन में सनसनी फैला दी थी। उसने अपनी शो विंडो पर काला कपड़ा लटका दिया था। उस काले पर्दे के बीच में एक छोटा सा छेद था और उस छेद के पीछे बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा थाः झांकना सख्त मना है।
फिर तो बस यातायात ठप्प हो गया था।
लोगों की भीड़ बाहर बढ़ती ही जाती थी।

घंटों भीड़ के धक्के खाकर भी लोग उस छेद तक पहुंचने की कोशिश कर रहे थे।
हालांकि, छेद में झांकने पर कुछ तौलियों के अतिरिक्त और कुछ भी नजर नहीं आता था। वह तौलियों की एक छोटी सी दुकान थी। और, वह तौलियों के विज्ञापन की एक रामबाण विधि थी।
ऐसा ही मनुष्य स्वयं ही, अपने ही मन के साथ करके स्वयं को ही फंसा लेता है।
इसलिए, निषेध और दमन से सदा सावधान रहने की जरूरत है।

रजनीश के प्रणाम
1-10-1970

(प्रतिः मां योग लक्ष्मी, बंबई)

96/ जिन खोया तिन पाइयां

मेरे प्रिय,
प्रेम। सत्य कहां है?
खोजो मत।
खोजने से सत्य मिला ही कब है?
क्योंकि, खोजने में खोजने वाला जो मौजूद है।
इसलिए, खोजो मत--खो जाओ।
जो स्वयं मिट जाता है, वह सत्य को पा लेता है।
मैं नहीं कहता, जिन खोजा तिन पाइयां।
मैं कहता हूं, जिन खोया तिन पाइयां।

रजनीश के प्रणाम
1-8-1969

(प्रतिः स्वामी क्रियानंद, बंबई)

97/ जीवन को ही निर्वाण बनाओ

मेरे प्रिय,
प्रेम। जीवन के विरोध में निर्वाण मत खोजो।
वरन जीवन को ही निर्वाण बनाने में लग जाओ।
जो जानते हैं, वे यही करते हैं।
दो जैन के प्यारे शब्द हैंः
मोक्ष के लिए कर्म मत करो।
बल्कि, समस्त कर्मों को ही मौका दो कि वे मुक्तिदायी बन जाएं।
यह हो जाता है, ऐसा मैं अपने अनुभव से कहता हूं।
और, जिस दिन यह संभव होता है।
उस दिन जीवन एक पूरे खिले हुए फूल की भांति सुंदर हो जाता है।
और सुवास से भर जाता है।

रजनीश के प्रणाम
15-8-1969

(प्रतिः स्वामी क्रियानंद, बंबई)

98/ स्वप्नों से मुक्ति सत्य का द्वार है।

प्रिय योग चिन्मय,
प्रेम। आदमी तथ्यों में नहीं, स्वप्नों में जीता है।
और, प्रत्येक मन अपना एक जगत निर्माण कर लेता है, जो कि कहीं भी नहीं है।
रात्रि ही नहीं--दिन भर भी चित्त स्वप्नों से ही घिरा रहता है।
इन स्वप्नों की मात्रा और तीव्रता के बढ़ जाने का नाम ही विक्षिप्तता है।
और इन स्वप्नों की शून्यता का नाम ही स्वास्थ्य है।
किसी देश के राष्ट्रपति देश के सबसे बड़े पागलखाने का निरीक्षण कर रहे थे।
पागलखाने के सुपरिन्टेंडेंट ने एक कमरे की ओर इशारे करके बतायाः इस कमरे में वे पागल हैं, जिन्हें कार का सख्त सवार है।
राष्ट्रपति को उत्सुकता हुई।
उन्होंने उस कमरे की खिड़की से झांका और फिर सुपरिन्टेंडेंट से कहाः
इस कमरे में तो कोई भी नहीं है!
सुपरिन्टेंडेंट बोलाः सब वहीं होंगे, महानुभाव! पलंगों के नीचे लेटे हुए कार की मरम्मत कर रहे होंगे!
और क्या ऐसे ही सभी लोग अपनी अपनी कल्पनाओं के नीचे नहीं लेटे हुई हैं?
काश! वे राष्ट्रपति भी स्वयं का विचार करते तो क्या पाते?
क्या हमारी राजधानियां हमारी सबसे बड़े पागलखाने नहीं है?
लेकिन, स्वयं का पागलपन स्वयं को दिखाई नहीं पड़ता है।
वैसे, यह पागलपन की अनिवार्य शर्त भी है।
जिसे स्वयं पर संदेह होने लगता है--जिसे स्वयं का पागलपन दिखाई पड़ने लगता है--समझना चाहिए कि उसके पागलपन के टूटने का समय निकट आ गया है।
विक्षिप्तता के बोध से विक्षिप्तता टूट जाती है।
अज्ञान के बोध से अज्ञान टूट जाता है।
स्वप्न के बोध से स्वप्न टूट जाता है।
और फिर जो शेष रह जाता है, वही सत्य है।

रजनीश के प्रणाम
20-10-1970

(प्रतिः स्वामी योग चिन्मय, बंबई)

99/ स्वभाव में जीना साधना है।

प्रिय योग चिन्मय,
प्रेम। साधना का अर्थ है स्वभाव में डूबना--स्वभाव में जीना--स्वभाव
ही हो जाना।
इसलिए, विभाव की पहचान चाहिए।
जिससे मुक्त होना है, उसे पहचानना अत्यंत आवश्यक है।
वस्तुतः तो उसकी पहचान--उसकी प्रत्यभिज्ञा (त्तमबवहदपजपवद) ही उससे मुक्ति बन जाती है।
बांकेई के एक शिष्य ने उससे कहाः मुझे क्रोध बहुत आता है। क्रोध से मुक्त होना चाहता हूं। लेकिन, नहीं हो पाता हूं। मैं क्या करूं?
बांकेई ने उसे घूर कर देखा--उसकी आंख में आंख डाल कर देखा।
वह कुछ बोला नहीं--बस, उसे देखते रहाः गहरे और गहरे और गहरे।

मौन के वे थोड़े से क्षण पूछने वाले को बहुत लंबे और भारी हो गए।
उसके माथे पर पसीने की बूंद झलक आई।
वह उस स्तब्धता को तोड़ना चाहता था लेकिन साहस ही नहीं जुटा पा रहा था।
फिर बांकेई हंसने लगा और बोला, बड़ी विचित्र बात है। खोजा--लेकिन क्रोध तुममें कहीं दिखाई नहीं पड़ता है। फिर भी--थोड़ा मुझे दिखाओ तो सही--अभी, और यहीं।
वह व्यक्ति कहने लगाः सदा नहीं रहता है। कभी-कभी होता है, अकस्मात।
इसलिए, अभी कैसे दिखाऊं।
बांकेई हंसने लगा और बोलाः तब यह तुम्हारा यथार्थ स्वभाव नहीं है। क्योंकि, स्वभाव तो सदा ही साथ है। यदि तुम तुम्हारा स्वभाव होता तो तुम इसे किसी भी समय मुझे दिखा सकते। जब तुम पैदा हुए थे तब यह तुम्हारे साथ नहीं था और जब मरोगे तब यह तुम्हारे साथ नहीं होगा। नहीं--यह क्रोध तुम नहीं हो जरूर ही कहीं कोई भूल हो गई है। जाओ--फिर से सोचो। फिर से खोजो। फिर से ध्याओ।

रजनीश के प्रणाम
3-11-1970

(प्रतिः स्वामी योग चिन्मय, बंबई)

100/ आत्मनिष्ठा

प्रिय कृष्ण करुणा,
प्रेम। आत्म-निष्ठा से बड़ी कोई शक्ति नहीं है।
स्वयं पर विश्वास की सुवास ही अलौकिक है।
शांति, आनंद, सत्य--सभी उस सुवास का पीछा करते हैं।
जिसे स्वयं पर विश्वास है वह स्वर्ग में है।
और जिसे स्वयं पर ही अविश्वास है, उसके हाथ में नर्क की कुंजी है।
आंग्ल विचारक डेविड ह्मूम नास्तिक थे।
लेकिन, वे जान ब्राउन जैसे आस्तिक का प्रवचन सुनने जरूर हर रविवार को चर्च पहुंच जाते थे।
लोगों ने उनसे कहा कि आपका चर्च में जाना आपके ही सिद्धांतों के विरुद्ध पड़ता है।
ह्मूम हंसने लगे और बोलेः जान ब्राउन अपने प्रवचनों में जो कहते हैं, उसमें मुझे विश्वास नहीं है; लेकिन जान ब्राउन को पूरा विश्वास है। सो हफ्ते में एक बार मैं ऐसे आदमी की बातें जरूर ही सुनना चाहता हूं जिसे स्वयं पर विश्वास है

रजनीश के प्रणाम
15-10-1970

(प्रतिः मा कृष्णा करुणा, बंबई)

101/ अनंत आशा ही पाथेय है

प्रिय कृष्ण करुणा,
प्रेम। प्रभु को खोज में अनंत आशा के अतिरिक्त और कोई पाथेय नहीं है।
आशा अंधेरे में ध्रुव तारे की भांति चमकती रहती है।
आशा अकेलेपन में छाया की भांति साथ देती रहती है।
और निश्चय ही जीवन-पथ पर बहुत अंधेरा है, और बहुत एकाकीपन है।

लेकिन, केवल उन्हीं के लिए जिनके साथ कि आशा नहीं है।
प्रसिद्ध भौगोलिक अन्वेषक डोनाल्ड मेकमिलन उत्तरी ध्रुव की यात्रा
पर जाने की तैयारी कर रहे थे कि उनके पास एक पत्र आया। लिफाफे के ऊपर लिखा थाः इसे तभी खोला जाए जब कि बचने की कोई आशा शेष न रहे।
पचास साल बीत गए; मगर वह लिफाफा मेकमिलन के पास वैसा ही पड़ा रहा--बंद
का बंद।
एक बार किसी ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहाः एक तो जिस अज्ञात व्यक्ति ने इसे भेजा था, मैं उसका विश्वास कायम रखना चाहता था। और, दूसरे मैंने कभी आशा नहीं छोड़ी।
आह! कैसे बहुमूल्य शब्द हैं कि मैंने कभी आशा नहीं छोड़ी।

रजनीश के प्रणाम
20-11-1970

(प्रतिः मां कृष्ण करुणा, बंबई)

102/ संकल्प के पीछे-पीछे आती है साधना

प्यारी मौनू,
प्रेम। संन्यास का संकल्प शुभ प्रारंभ है।
संकल्प के पीछे-पीछे आते है साधना--छाया की भांति ही।
मन में भी बीज बोने पड़ते हैं।
और जो हम बोते हैं, उसकी ही फसल भी काट सकते हैं।
मन में भी राहें बनानी पड़ती हैं।
प्रभु का मंदिर तो है निकट ही--पर हमारा मन है एक बीहड़ बन--जिसमें से मंदिर तक मार्ग बनाना है।
और प्रारंभ निकट से ही करना होता है।
दूर जाने के लिए भी कदम तो निकट में ही उठाने पड़ते हैं।
सत्य की यात्रा में ही नहीं--किसी भी यात्रा में प्रथम और अंतिम भिन्न-भिन्न नहीं हूं।
वे दोनों एक विस्तार के दो छोर हैं--एक ही यथार्थ के दो ध्रुव हैं।
और फिर भी पहले कदम से अंतिम लक्ष्य का अनुमान भी नहीं होता है।
और कभी-कभी तो पहला कदम अंतिम में असंगत ही मालूम होता है!
चार्ल्स कैटरिंग ने एक मजेदार संस्मरण लिखा है।
लिखा हैः मैंने एक मित्र से शर्तबंदी कि यदि मैं उसे एक पिंजड़ा भेंट
कर दूं तो उसे उसके लिए एक पक्षी खरीदना ही पड़ेगा। शर्त में यह शर्त भी थी कि पिंजड़ा उसे अपनी बैठक में लटकाना होगा। वह हंसा और उसने कहा कि पिंजड़ा बिना पक्षी के भी रह सकता है--इसमें ऐसी क्या बात है? खैर उसने चुनौती स्वीकार कर ली और मैंने उसे स्विटजरलैंड से बुला कर एक सुंदर पिंजड़ा भेंट कर दिया। स्वभावतः जो होना था, वही हुआ। जीवन के भी अपने तर्क हैं! जो भी खाली पिंजड़े को देखता, वह कहताः आह! आपका पक्षी कब मर गया? मित्र कहतेः मेरे पास कोई पक्षी कभी था ही नहीं? तब लोग आश्चर्य से पूछतेः फिर यह खाली पिंजड़ा यहां किसलिए है? अंततः मित्र थक गए और एक पक्षी खरीद लाए। मैंने पूछा तो बोलेः यही ज्यादा आसान था कि पक्षी खरीद लाऊं और शर्त हार जाऊं-- बजाय सुबह से सांझ तक लोगों को समझाने के। और फिर दिन रात खाली पिंजड़ा देख-देख मुझे भी ख्याल आता रहता--पक्षी--पक्षी--पक्षी!
संकल्प का पिंजड़ा मन की बैठक में लटका हो तो साधना के पक्षी के आने में ज्यादा देर नहीं लगती है।

रजनीश के प्रणाम
1-11-1970

(प्रतिः सुश्री मौनू (क्रांति), जबलपुर)

103/ अनासक्ति

प्यारी मौनू,
प्रेम। अनासक्ति का संबंध वस्तुओं से नहीं, विचार से है।
अनासक्ति का संबंध बाह्य से नहीं, अंतस से है।
अनासक्ति का संबंध संसार से नहीं, स्वयं से है।
एक दिन एक भिखारी किसी सूफी फकीर से मिलने आया और अपने देखा कि फकीर
एक सुंदर खेमे में मखमल की गद्दी पर बैठे हैं और खेमे की रस्सियां सोने के खूंटों से बंधी हैं। वह बोलाः आह! मैं भी कहां आ गया हूं? पीर साहिब, मैंने तो आपकी अनासक्ति और अध्यात्म की बड़ी प्रशंसा सुनी थी। आप तो एक बड़े वीतराग संत माने जाते हैं; लेकिन आपके ये शाही ठाठ देख कर मुझे बहुत अफसोस हुआ है।
सूफी फकीर ने हंस कर उत्तर दियाः मैं आपके साथ अभी सब चीजें छोड़ कर चलने को तैयार हूं।
और वे सच ही गद्दी से उठ कर फौरन भिखारी के साथ चल दिए। उन्होंने जूते
भी नहीं पहने। लेकिन, थोड़ी देर बाद भिखारी परेशान होकर बोलाः अरे! मैं अपना भिक्षापात्र तो आपके खेमे में ही छोड़ आया? अब क्या करूं? आप यही रुकें--मैं उसे ले आता हूं।
सूफी फकीर ने हंसते हुए कहाः मित्र! आपके कटोरे ने अभी तक आपका पीछा नहीं छोड़ा! और मेरे खेमे के सोने के खूंटे मेरे सीने में नहीं, जमीन में ही गड़े थे।
संसार में होना आसक्ति नहीं है।
संसार का मन में होना आसक्ति है।
संसार का मन से वाष्पीभूत हो जाना अनासक्ति है।

रजनीश के प्रणाम
11-9-1970

(प्रतिः सुश्री मौनू (क्रांति), जबलपुर म. प्र.)

104/ बस, परिवर्तन ही एक शाश्वतता है

प्यारी मौनू,
प्रेम। परिवर्तन के अतिरिक्त और सभी कुछ परिवर्तित हो जाता है।
बस, परिवर्तन ही एक शाश्वतता है।
लेकिन, मनुष्य मन जीता है अतीत से (ढेंज वतपमदजमक)
और वही सब उलझनों की उलझन है।
एक दिन से लदे वायुयान ही वायुयान!
पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, जो भी भाग सकते थे, भाग चले। घोड़े, गधे, चूहे, भेड़ें, कुत्ते, बिल्लियां, भेड़िए--सभी भाग चले। रास्ते भर गए उन्हीं से। इस भागती भीड़ ने राह के किनारे एक दीवार पर दो गिद्धों को बैठे देखा। चिल्लाए सभी--बोले सभी उनसेः भाइयो--भाग चलो। समय न खोओ बैठने की यह घड़ी नहीं। अवसर है तब तक बच निकलो। आदमी फिर युद्ध में उतर रहा है!
लेकिन, गिद्ध सिर्फ मुस्कुराए।
वे अनुभवी थे और ज्यादा जानते थे।
फिर उनमें से एक ने कहाः हजारों वर्षों से आदमी के युद्ध गिद्धों के लिए सुसमाचार ही सिद्ध हुए हैं। ऐसा हमारे पुरखों ने भी कहा है--ऐसा हमारे शास्त्रों में भी लिखा है--और ऐसा हमारा स्वयं का भी अनुभव है। मित्रों के

लाभ के लिए ही परमात्मा आदमी को युद्धों में भेजता है। परमात्मा ने गिद्धों के लिए ही युद्धों और आदमी को बनाया है।
और यह कहते न कहते वे दोनों गिद्ध युद्ध की दिशा में परों को फैला कर
उड़ गए। लेकिन दूसरे ही क्षण बमों की मार में उनके अवशेष भी शेष न रहे। काश! उन्हें पता होता कि हजारों वर्षों में चीजें बदल जाती हैं!
पर आदमी को भी यह कहां पता है?

रजनीश के प्रणाम
13-11-1970

(प्रतिः सुश्री मौन (क्रांति), जबलपुर)

105/ सहज निवृत्ति--प्रवृत्ति में जागने से

प्रिय जया बहिन,
स्नेह। मैं आनंद में हूं। कितने दिनों से पत्र लिखना चाह रहा था पर अति व्यस्तता के कारण नहीं नहीं लिख सका। शुभकामनाएं तो रोज ही भेज देता हूं।
जीवन एक साधना है। उसे जितना साधो उतना शिवत्व निखरता आता है। प्रकाश
को अंधेरे में छिपा कर रखा हुआ है। सत्य छिपा हुआ है इसलिए खोजने का आनंद भी है!
एक ऋषि वचन स्मरण आता हैः हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। (सत्य स्वर्ण ढक्कन से गोपति या आच्छादित है।) यह जो स्वर्णपात्र सत्य को ढांके हुए है वह अन्य कोई नहीं स्वयं हमारा ही मन है। मन ही हमें आच्छादित किए हुए है। उसमें हैं--उससे तादात्म्य किए हुए हैं--इससे दुख है, बंधन है, आवागमन है। उसके ऊपर उठ जाएं--उससे भिन्न स्व को जान लें--वही आनंद है, मुक्ति है; जन्म मृत्यु के पार जीवन को पाना है। हम जो हैं वही होना है। यही साधना है।
इस साधना पर प्रवृत्ति की सफलता अपने आप ले आती है। प्रवृत्ति के प्रति जागरूक होते ही निवृत्ति आनी प्रारंभ हो जाती है। प्रवृत्ति लानी नहीं है। वह प्रवृत्ति के प्रति सजग होने का सहज परिणाम है। प्रत्येक को केवल प्रवृत्ति की ओर जागना है--जागते चलना है। दैनदिन समस्त क्रिया कलापों में जागरण लाना है। कुछ भी मूर्च्छित न होः यह स्मरण रहे तो किसी दिन चेतना के जगत में एक अभूतपूर्व क्रांति घटित हो जाती है।
प्रभु आपको इस क्रांति की ओर खींच रहा है यह मैं जानता हूं।

रजनीश के प्रणाम
13-7-1962 (दोपहर)

(प्रतिः सुश्री जया बहिन शाह, बंबई)

106/ ध्यान--अप्रयास, अनयास से

श्रीमती जया बहिन,
प्रणाम। आपका स्नेह पूर्ण पत्र पाकर अनुगृहीत हूं।
ध्यान कर रही है; यह आनंद की बात है। ध्यान में कुछ पाने का विचार छोड़ दें; बस उसे सहज ही करती चलें--जो होता है वह अपने से होता है। किसी दिन अनायास सब हो जाता है। ध्यान की उपलब्धि हमारे प्रयास की बात नहीं; वरन प्रयास बाधा है। प्रयास में, प्रयत्न में, अयास में एक तनाव है। कुछ पाने की--शांति पाने की आकांक्षा भी--अशांति है। यह सब तनाव नहीं रखना है। इस

तनाव के जाते ही एक अलौकिक शांति का अवतरण हो जाता है। यह भाव छोड़ दे कि मैं कुछ कर रही हूं--यही समझें कि मैं अपने को छोड़ रही हूं उसके हाथों में जो कि है। छोड़ दें--एकदम छोड़ दें और छोड़ते ही शून्यता आ जाती है। शरीर और श्वास शिथिल हो रहे हैंः मन भी होगा। मन भी चला जाता है और तब जो होता है वह शब्दों में नहीं बंधता है। मैं जानता हूं कि यह आपको होने को है, इला को भी होने को है--बस बढ़ती चलें, सहज और निष्प्रयोजन। फिर मैं आने को हूं तब तक जो मैं कहां हूं उसे शांत करते रहना है।
सबको मेरे विनम्र प्रणाम कहें--और जब भी मन हो तो पत्र दें। मैं पूर्ण आनंद में हूं।

रजनीश के प्रणाम
5-10-1962 (दोपहर)

(प्रतिः सुश्री जया बहिन शाह, बंबई)

107/ साक्षी की आंखें

सुश्री जया जी,

प्रणाम। मैं बाहर थाः मेरे पीछे घूमता हुआ आपका पत्र मुझे यात्रा में मिला। उसे पाकर आनंद हुआ है। जीवन मुझे आनंद से भरा दीखता है। पर उसे देख पाने की आंखें न होने से हम उससे वंचित रह जाते हैं। ये आंखें पैदा की जा सकती हैः शायद पैदा करना कहना ठीक नहीं हैः वे हैं और केवल उन्हें खोलने भर की ही बात है और परिणाम में सब कुछ बदल जाता है। ध्यान से यह खोलना पूरा होता है। ध्यान का अर्थ हैः शांतिः शून्यता। यह शून्यता मौजूद पर विचार प्रवाह से, मन से ढंकी है। विचार के जाते ही वह उदघाटित हो जाती है। पूरी विचार प्रवाह से मुक्त होना कठिन दीखता है पर बहुत सरल है। यह मन बहुत चंचल दीखता है पर बहुत ही आसानी से रुक जाता है। इसे पार कर जाने की कुंजी साक्षीभाव है। मन के प्रति साक्षी होना है, द्रष्टा बनना हैः इसे देखना हैः केवल देखना है और यह साक्षी बोध जिस क्षण उपलब्ध हो जाता है उसी क्षण विचार से मुक्ति हो जाती है। विचार मुक्त होते ही आनंद के द्वार खुल जाते हैं और यहां जगत एक नया जगत हो जाता है।
ध्यान को चलाए चलें--परिणाम आहिस्ता-आहिस्ता आएंगे। उनकी चिंता नहीं करनी है। उनका आना निश्चित है। मेरा बंबई आना अभी तय नहीं है। तय होते ही सूचित करूंगा। सबको मेरे विनम्र प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
20-10-1962

(प्रतिः सुश्री जया शाह, बंबई)

108/ अतः ज्योति

प्रिय बहन,
प्रभु की अनुकंपा है कि आप भीतर की ज्योति के दर्शन में लगी हैं। वह ज्योति निश्चित ही भीतर है जिसके दर्शन से जीवन का समस्त तिमिर मिट जाता है। एक एक चरण भीतर चलता है और पर्त पर्त अंधेरा कटता जाता है और फिर आता है आलोक को लोक और सब कुछ नया हो जाता है। इस दर्शन से बंधन गिर जाते हैं और ज्ञात होता है वे वस्तुतः कभी थे ही हनीं--नित्य मुक्त को मुक्ति मिल जाती है।

मैं आपकी प्रगति से प्रसन्न हूं। आपका पत्र मिले तो देर हुई पर बहुत व्यस्थ था इसलिए उत्तर में विलंब हो गया है। पर स्मरण आपका मुझे बना रहता है--उन सबका बना रहता है जो प्रकाश की ओर उन्मुख हैं और उन सबके लिए मेरी अंतरात्मा से सदभावनाए बहती रहती हैं। चलते चलना है--बहुत बार मार्ग निराश करता है पर अंततः जिन्हें प्यास है उन्हें पानी भी मिल ही जाता है। वस्तुतः प्यास के पूर्व ही पानी की सत्ता है।
सबको मेरे विनम्र प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
21-11-1962 (प्रभात)

(प्रतिः सुश्री जया शाह, बंबई)

109/ स्वप्निल मूर्च्छा-ग्रंथि

प्रिय बहन,
प्रणाम। आपका पत्र मिले देर हो गई है। मैं शांति पाने की आपकी भावना
से आनंद से भर जाता हूं। यह विचार अपने से अलग कर दें कि आप पीछे हैं। कोई पीछे नहीं हैः जरा सा भीतर मुड़ने की बात है और बूंद सागर हो जाती है। वस्तुतः तो बूंद सागर ही है पर उसे यह ज्ञात नहीं है। इतना सा ही भेद है। ध्यान के शून्य में जो दर्शन होता है उससे यह भेद भी पूछ जाता है।
ध्यान जीवन साधना का केंद्र है। विचार प्रवाह धीरे-धीरे चला जाएगा और उसके स्थान पर उतरेगी शांति और शून्यता। विचार गए तो जो द्रष्टा है, साक्षी है उसके दर्शन होंगे और मूर्च्छा की ग्रंथि खुली जाएगी। इस ग्रंथि से ही बंधन है। यह ग्रंथि प्रारंभ में पत्थर सी दीखती है और धैर्य से प्रयोग करता साधक एक दिन पाता है कि वह बिल्कुल स्वप्न थी--हवा थी।
ध्यान का बीज एक दिन समाधि के फूल में खिले मेरी यही आपके प्रति कामना है।
सबको मेरे विनम्र प्रणाम कहें। इला कैसी है? शेष मिलने पर।

रजनीश के प्रणाम।
14-12-62

(प्रतिः श्री जया शाह, बंबई)

110/ शून्य है द्वार प्रभु का

प्रिय बहन,
प्रणाम। मैं प्रतीक्षा में ही था कि पत्र मिला है। जीवन में आपके प्रकाश भर जाए और आप प्रभु को समर्पित हो सकें यही मेरी कामना है।
प्रभु और प्रकाश निरंतर निकट हैं, बस आंख भर खोलने की बात है और--जो हमारा है वह हमारा हो जाता है। आंख की पलकों का ही फासला है--याकि, शायद उतना भी फासला नहीं है, आंखें खुली ही हैं और हमें ज्ञात नहीं है।
एक पुरानी कथा हैः एक मछली बहुत दिनों से सागर के संबंध में सुनती रही थी। फिर एक दिन उससे न रहा गया और उसने मछलियों की रानी से पूछ लिया कि यह सागर क्या है? और कहा है? रानी बोली थीः सागर? सागर में ही तुम हो, (सागर में ही) तुम्हारा जीवन, तुम्हारा सत्ता है। सागर तुमने है और तुम्हारे बाहर भी जो है वह भी सागर है। सागर से तुम बनी हो और उसमें ही तुम्हें विलीन होना है। सागर तुम्हारा सब कुछ है और उसके अतिरिक्त तुम कुछ भी नहीं हो।

और शायद इसलिए ही सागर मछली को दिखाई नहीं पड़ता है?
और शायद इसलिए ही प्रभु से हमारा मिलन नहीं होता है?
पर मिलन हो सकता है। उस मिलन का द्वार शून्य है, शून्य होते ही उससे मिलना हो जाता है क्योंकि वह भी शून्य ही है।
मैं आनंद में हूंः याकि कहूं कि आनंद ही है और मैं नहीं हूं।

रजनीश के प्रणाम
12-1-1963

(प्रतिः सुश्री जया बेन शाह, बंबई)

111/ योग साधना है सम्यक धर्म

प्रिय बहिन,
प्रणाम। आपका पत्र मिला है। मैं प्रतीक्षा में ही था। राजनगर की यात्रा आनंदपूर्ण रही है। धर्म साधना योग की दिशा को छोड़ केवल नैतिक रह गई है; उससे उसे प्राण खो गए हैं। नीति नकारात्मक है और केवल नकार पर जीवन की बुनियाद नहीं रखी जा सकती है। अभाव प्राण नहीं दे सकता है। छोड़ने पर नहीं, पाने पर जोर आवश्यक है। अज्ञात को छोड़ने की जगह ज्ञान को पाने को केंद्र बनाना है। यह साधना से ही हो सकता है। ऐसी साधना योग से उपलब्ध होती है। आचार्य श्री तुलसी, मुनि श्री नथुमल जी आदि से हुई चर्चाओं में मैं इतनी बात पर जोर दिया हूं। राजनगर तथा राजस्थान से इस संबंध में बहुत से पत्र भी आ रहे हैं; जैसा कि आपने लिखा है; लगता है कि वहां आने से कुछ सार्थक कार्य हुआ है। इतना स्पष्ट दिख रहा है कि लोग आत्मिक जीवन के प्यासे हैं और प्रचलित धर्म के रूप उन्हें तृप्ति नहीं दे पाते हैं। और सम्यक धर्म का रूप उन्हें दिया जा सके तो मानवीय चेतना में एक क्रांति घटित हो सकती है। आपकी स्मृति आती है। ईश्वर आपको शांति दे। सबको मेरा प्रेम और प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम
10-2-1963

(प्रतिः सुश्री जया शाह, बंबई)

112/ प्यास, प्रार्थना, प्रयास और प्रतीक्षा

परम प्रिय,
प्रेम। पत्र मिला है। उससे आनंदित हूं। सत्य के लिए, शांति के लिए, धर्म के लिए, हृदय जब इतनी अभीप्सा से भरा है, तो एक न एक दिन उस सूर्य के दर्शन भी होंगे ही जिसके साक्षात से ही जीवन का सब अंधकार दूर हो जाता है। प्यास करो।
प्रार्थना करो।
प्रयास करो और
प्रतीक्षा करो।
छोटे छोटे कदम कैसे हजारों मिल का फासला तय करेंगे, इससे घबड़ाना मत।
एक एक कदम चल कर ही अनंत दूरियां भी तय की जा सकती हैं।
बूंद बूंद जुड़ कर ही तो सागर भरता है।
वहां सबको प्रणाम। मैं तो अब जल्दी ही आ रहा हूं। शेष मिलने पर।
त्रिमूर्ति के क्या हाल हैं?

रजनीश के प्रणाम
30-8-1966

(प्रतिः श्री जयंती भाई, बंबई)

113/ जीवन-शृंखला की समझ

प्रिय, हसुमति,
प्रेम। असंभव भी असंभव नहीं है।
बस संकल्प चाहिए।
और संभव भी असंभव हो जाता है।
बस, संकल्पहीनता चाहिए।
जगत जिसमें हम जीते हैं, वह स्वयं का ही निर्माण है।
लेकिन, बीज बोने और फसल आने मग समय के अंतराल से बड़ी भांति हो जाती है।
कारण (बंनेम) और कार्य (मिमिबज) के ज.ुडे हुए न दिखाई देने से चित्त जिसे सहज ही समझ सकता था, उसे भी नहीं समझ पाता है।
लेकिन, टूटा हुआ और अशृंखला कुछ भी नहीं है।
जो कड़ियां (ऊपेपदह डपदो) दिखाई नहीं पड़ती हैं, वे भी हैं, और थोड़े ही गहरे निरीक्षण के सामने प्रकट हो जाती हैं।
जीवनशृंखला की समझ ही शांति का द्वार है।
प्रकाश बहुत निकट है, लेकिन वह भी खोजने वाले की प्रतीक्षा करता है।

रजनीश के प्रणाम
19-11-1970

(प्रतिः कुमारी हसुमति एच. दलाल, लाड निवास, 3 रा माला, रूम नं. 26, अर्धेश्वर दादी स्ट्रीट, बंबई--4)

114/ जीवन-संगीत

प्यारी संगीता,
प्रेम। आकाश में चांद उगे तब उसे एक टक निहारना--शेष सब भूल कर।
स्वयं को भी भूल कर।
तब ही तू जानेगी उस संगीत को जो कि स्वरहीन है।
और तब भोर का सूर्य जगे तब पृथ्वी पर सिर टके उसके प्रणाम में खो जाना।
तब ही तू जानेगी उस संगीत को कि मनुष्य निर्मित नहीं है।
और जब वृक्षों पर फूल खिलें तब हवा के झोंको में उनके साथ नाचना फूल
ही बन कर।
तब ही तू जानेगी उस संगीत को जो कि स्वयं के अंतस्तल में ही जन्मता है।
और जो ऐसे संगीत को पहचान लेता है, वह जीवन को ही पहचान लेता है।
जीवन संगीत का ही दूसरा नाम परमात्मा है।

रजनीश के प्रणाम
14-11-70

(प्रतिः चि. संगीता खाबिया, खाबिया सदन, चौमुखी पुल, रतलाम म. प्र.)

115/ छोड़ो स्वयं को और मिटो

मेरे प्रिय,
प्रेम। प्रेम भी आग है।
ठंडी आग!
फिर भी उसमें जलना तो पड़ता ही है।
लेकिन, वह निखारता भी है।
निखारने के लिए ही वह जलाती है।
कूड़ा-करकट जल जाता है, तभी तो शुद्ध स्वर्ण उपलब्ध होता है।
ऐसे ही मेरा प्रेम भी पीड़ा बनेगा।
मैं तुम्हें मिटा ही डालूंगा क्योंकि तुम्हें बनाना है।
बीज को तोड़ना ही होगा--अन्यथा वृक्ष का जन्म कैसे होगा?
सरिता को समाप्त करना ही पड़ेगा--अन्यथा वह सागर बनने से वंचित ही रह जाएगी।
इसलिए, छोड़ो स्वयं को और मिटो।
क्योंकि, स्वयं को पाने का और कोई मार्ग नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
25-19-1970

(प्रतिः श्री सरदारीलाल सहगल, न्यू मिसरी बाजार, अमृतसर)

116/ प्रेम--अनंतता है

मेरे प्रिय।
प्रेम। तुम्हारा पत्र पाकर अत्यंत आनंदित हूं।
ऐसा हो भी कैसे सकता है कि प्रेम की किरण आवे और साथ में आनंद की सुवास
न हो?
आनंद प्रेम की सुवास के अतिरिक्त है ही क्या?
लेकिन पृथ्वी तो ऐसे पागलों से भरी है, जो कि--जीवन भर आनंद की तलाश करते हैं और प्रेम की ओर पीठ किए रहते हैं।
प्रेम ही जब समग्र प्राणों की प्रार्थना बन जाता है।
तभी प्रभु के द्वार खुल जाते हैं।
शायद उसके द्वार खुले ही हैं, लेकिन जो आंखें प्रेम के लिए बंद हैं, वे उसके खुले द्वारों को भी कैसे देख सकती हैं?
लेकिन, यह क्या लिखा हैः क्षणिक संपर्क!
नहीं! नहीं! प्रेम का संपर्क क्षणिक कैसे हो सकता है?
प्रेम तो क्षण को भी अनंत बना देता है।
प्रेम जहां है वहां कुछ भी क्षणिक नहीं है।
प्रेम जहां है वहीं अनंतता (द्मजमतदपजल) है।
बूंद क्या बूंद ही है?
नहीं! नहीं!
वह सागर भी है।
प्रेम की आंखों से देखी गई बूंद सागर हो जाती है।
मैं अगस्त में यहां प्रतीक्षा करूंगा। 2, 3, 4 अगस्त। टंडन जी को मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम
30-6-68

(प्रतिः श्री महीपाल, बंबई)

117/ संकल्प और समर्पणरत साधना

प्रिय सोहनबाई,
स्नेह, बहुत बहुत स्नेह। मैं बाहर से लौटा हूं तो आपका पत्र मिला है। उसके शब्दों से आपके हृदय की पूरी आकुलता मुझ तक संवादित हो गई है। जो आकांक्षा आपके अंतःकरण को आंदोलित कर रही है, और जो प्यास आपकी आंखों में आंसू बन जाती है, उसे मैं भलीभांति जानता हूं। वह कभी मुझ में भी थी, और कभी मैं भी उससे पीड़ित हुआ हूं।
मैं आपके हृदय को समझ सकता हूं क्योंकि प्रभु की तलाश में मैं भी उन्हीं रास्तों से निकला हूं जिनसे कि आपको निकलना है। और, उस आकुलता को मैंने भी अनुभव किया है, जो कि एक दिन प्रज्वलित अग्नि बन जाती है, ऐसी अग्नि जिसमें कि स्वयं को ही जल जाना होता है। पर वह जल जाना ही एक नये जीवन का जन्म भी है। बूंद मिट कर ही तो सागर हो पाती है।
समाधि साधना के लिए सतत प्रयास करती रहें। ध्यान को गहरे से गहरा करना है। वही मार्ग है। उससे ही, और केवल उससे ही, जीवन सत्य तक पहुंचाना संभव हो पाता है।
और, जो संकल्प से और संपूर्ण समर्पण से साधना होता है, स्मरण रखें कि उसका सत्य तक पहुंचना अपरिहार्य है। वह शाश्वत नियम है। प्रभु की ओर उठाए कोई चरण कभी व्यर्थ नहीं जाते हैं।
वहां सबको मेरा प्रणाम कहें। श्री माणिकलाल जी की नये वर्ष की शुभ कामनाएं मिली हैं। परमात्मा उनके अंतस को ज्योतिमर्य करे, यही मेरी प्रार्थना है।

रजनीश के प्रणाम
11-11-1964

(प्रतिः सोहन बाफना, पूना)

118/ अंतस में छिपे खजाने की खुदाई

प्रिय सोहनबाई,
प्रेम। तुम्हारा पत्र मिला है।
जो शांति मुझमें है, उसे चाहा है।
किसी भी क्षण वह तुम्हारी ही है।
वह हम सब की अंतर्निहित संभावना है।
केवल उसे खोदना और उघाड़ना है।
जैसे मिट्टी की परतों में जलस्रोत दबे रहते हैं, ऐसे ही हमारे भीतर आनंद का राज्य छिपा हुआ है।
यह संभावना तो सबकी है, पर जो उसे खोदते हैं, मालिक केवल वे ही उसके हो पाते हैं।
धर्म अंतस में छिपे उस खजाने की खुदाई का उपाय है।
वह स्वयं में प्रकाश का कुंआ खोदने की कुदाली है।
वह कुदाली तो मैं तुम्हें बताया हूं, अब खोदना तुम्हें है।
मैं जान रहा हूं कि तुम्हारे चित्त को भूमि बिल्कुल तैयार है।
और बहुत अल्प श्रम से अनंत जलस्रोतों को पाया जा सकता है।
चित्त की ऐसी स्थिति बहुत सौभाग्य से मिलती है।
इस सौभाग्य, और इस अवसर का पूरा उपयोग करना है।
ऐसे संकल्प से अपने को भरो,
और शेष प्रभु पर छोड़ दो।
सत्य सदा संकल्प के साथ है।

पत्र लिखने में संकोच कभी मत करना।
मेरे पास तुम्हारे लिए बहुत समय है।
उनके ही लिए हूं, जिनको मेरी जरूरत है।
मेरे जीवन में मेरे लिए अब कुछ भी नहीं है।
श्री मणिकलाल जी को मेरा प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
23-11-1964

(प्रतिः सुश्री सोहन बाफना, पूना)

119/ अंतर्यात्रा--स्वयं में, सत्य में

प्रिय सोहन,
स्नेह। मैं आनंद में हूं। आज रात्रि ही पुनः बाहर जा रहा हूं। बंबई आकर मिल सकीं, यह शुभ हुआ। तुम्हारे भीतर जो हो रहा है, उसे देखकर हृदय प्रफुल्लित हुआ। ऐसे ही व्यक्ति तैयार होता है और सत्य के सोपान चढ़े जाते हैं। जीवन दुहरी यात्रा हैः एक यात्रा समय और स्थान होता है, और दूसरी यात्रा स्वयं में और सत्य में होती है। पहली यात्रा का अंत मृत्यु में और दूसरी का अमृत में होता है। दूसरी ही यात्रा वास्तविक है, क्योंकि वही कहीं पहुंचाती है। जो पहली यात्रा को ही सब समझ लेते हैं, उनका जीवन अपव्यय हो जाता है। वास्तविक जीवन उसी दिन आरंभ होता है जिस दिन दूसरी यात्रा की शुरुआत होती है। तुम्हारी चेतना मैं वह शुभारंभ हुआ है और मैं उसे अनुभव कर आनंद से भर गया हूं। माणिक लाल जा को और सबको मेरा स्नेह।

रजनीश के प्रणाम
4-1-1965

(प्रतिः सुश्री सोहन बाफना, पूना)

120/ प्रेम के दिए

प्यारी सोहन,
प्रेम। कल रात्रि जब सारे नगर में दीये ही दीये जले हुए थे तो मैं सोच रहा था कि मेरी सोहन ने भी दीये जलाए होंगे--और उन दीयों में से कुछ तो निश्चय ही मेरे लिए ही होंगे! और फिर वे दीये मुझे दिखाई देने लगे थे जो कि तूने जलाए थे और वे दीये भी जो कि सदा ही तेरा प्रेम जलाए हुए हैं।
मैं कल और यहां रहूंगा। सबसे तेरी बातें कही हैं और सभी तुझे देखने को उत्सुक हो गए हैं।
माणिक बाबू को प्रेम। बच्चों को आशीष।

रजनीश के प्रणाम
25-10-1965

(प्रतिः सुश्री सोहन बाफना, पूना)

121/ प्रेम ही सेवा है

प्रिय सोहन,

तेरा पत्र मिला है। अंगुली में क्या चोट मार ली है? दीखता है कि शरीर
को कोई ध्यान नहीं रखती है। और, मन के अशांत होने का क्या कारण है? इस स्वप्न जैसे जगत में मन को किसी भी कारण से अशांत होने देना ठीक नहीं है। शांति सबसे बड़ा आनंद है, और उससे बड़ी और कोई भी वस्तु नहीं है, जिसके लिए कि उसे खोया जा सके। इस पर मनन करना। सत्य के प्रति सजग होने मात्र से अंतस में परिवर्तन होते हैं।
मैं सोचता हूं कि शायद मेरी सेवा के लिए उदयपुर नहीं आ सकेगी--कहीं इस कारण ही चिंतित न हो। जहां तक होगा आना हो ही जाएगा और यदि न भी आ सकी तो दुख मत मानता। क्योंकि तेरी सेवा मुझे निरंतर ही मिल रही है। किसी के प्रेम की क्या काफी सेवा नहीं है? वैसे यदि तू नहीं आ पाएगी तो मुझे खाली- खाली तो बहुत लगेगा। अभी तक तो उदयपुर शिविर के साथ तेरे साथ का ख्याल भी जुड़ा हुआ है। और मुझे आशा भी है कि तू वहां आ जाएगी।
माणिक बाबू को प्रेम।
वहां शेष सबको मेरे प्रणाम रहना।

रजनीश के प्रणाम
29-4-1965 (प्रभात)

(प्रतिः सुश्री सोहन, पूना)

122/ प्रेम शून्य हृदय की दरिद्रता

प्यारी सोहन,
प्रेम। तेरा पत्र मिला है। दूब में उसी जगह बैठा था, जब मिला। उस समय क्या सोच रहा था, वह तो तभी बताऊंगा जब तू मिलेगी? स्मृतियां कितनी सुवास छोड़ जाती हैं!
जीवन प्रेम से परिपूर्ण हो तो कितना आनंद हो जाता है। जगत में केवल वे
ही दरिद्र हैं जिनके हृदय में प्रेम नहीं है।
और, उनके सौभाग्य का क्या कहना जिनके हृदय में सिवाय प्रेम के और कुछ
भी शेष नहीं रह जाता है। संपदा और शक्ति के ऐसे क्षणों में ही प्रभु का साक्षात होता है।
मैंने तो प्रेम को ही प्रभु जाना है।
माणिक बाबू को मेरा प्रेम पहुंचाना।

रजनीश के प्रणाम
1-6-1965 (प्रभात)

(प्रतिः सुश्री सोहन, पूना)

123/ गागर में प्रेम का सागर

प्रिय सोहन,
प्रेम। कल आते ही तेरा पत्र खोजा था। फिर रविवार था तो भी राह देखता रहा! आज संध्या पत्र मिला है। कितने थोड़े से शब्दों में तू कितना लिख देती है? हृदय भरा हो तो वह शब्दों में भी बह जाता है। इसके लिए बहुत शब्दों का होना जरूरी नहीं है। प्रेम का सागर गागर में भी बन जाता है और प्रेम के शास्त्र के लिए ढाई अक्षर का ज्ञान भी काफी है!
क्या तुझे पता है कि तेरे इन पत्रों को मैं कितनी बार पढ़ जाता हूं।
माणिक बाबू को प्रेम।

रजनीश के प्रणाम
7-6-1965 (रात्रि)

(प्रतिः सुश्री सोहन, पूना)

124/ प्रेम की संपदा

प्रिय सोहनबाई,
स्नेह। आपका अत्यंत प्रीतिपूर्ण पत्र मिला है।
आपने लिखा है कि मेरे शब्द आपके कानों में गूंज रहे हैं। उनकी गूंज आपकी अंतरात्मा को उस लोक में ले जाए जहां शून्य है और सब निःशब्द है। यही मेरी कामना है। शब्द से शून्य पर चलना हैः वही पहुंच कर स्वयं से मिलन होता है।
मैं आनंद में हूं। मेरे प्रेम को स्वीकार करें। उसके अतिरिक्त मेरे पास कुछ भी नहीं है। वही मेरी संपदा है और आश्चर्य तो यह है कि वह एक ऐसी संपदा है कि उसे जितना बांटो वह उतनी ही बढ़ती जाती है। वस्तुतः संपदा वही है, जो बांटने से बढ़े, जो घट जावें वह कोई संपदा नहीं है।
श्री माणिकलाल जी को और सबको मेरा प्रेम कहें। पत्र दें। आप ही नहीं, पत्र की मैं भी प्रतीक्षा करता हूं।

रजनीश के प्रणाम
2-11-1964

(प्रतिः सुश्री सोहन बाफना, पूना)

125/ परमात्मा है असीम प्रेम

चिदात्मन,
स्नेह। साधना शिविर से लौट कर बाहर चला गा था। रात्रि ही लौटा हूं। इस बीच निरंतर आपका स्मरण बना रहा है। आपकी आंखों में परमात्मा को पाने की जिस प्यास को देखा हूं, और आपके हृदय की धड़कनों में सत्योपलब्धि के लिए जो व्याकुलता अनुभव की है, उसे भूलना संभव भी नहीं था।
ऐसी प्यास सौभाग्य है, क्योंकि उसकी पीड़ा से गुजर कर ही कोई प्राप्ति
तक पहुंचता है।
स्मरण रहे कि प्यास ही प्रकाश और प्रेम के जन्म की प्रथम शर्त है।
और, परमात्मा प्रकाश और प्रेम के जोड़ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।
प्रेम ही परिशुद्ध और पूर्ण प्रदीप्त होकर परमात्मा हो जाता है। प्रेम पर जब कोई सीमा नहीं होती है, तभी उस निर्धूम स्थिति में प्रेम की अग्नि परमात्मा बन जाती है।
आपमें इस विकास की संभावना देखी है, और मेरी अंतरात्मा बहुत आनंद से
भर गई है।
बीज तो उपस्थित है, अब उसे वृक्ष बनाना है। और शायद वह समय भी निकट आ गया है।
परमात्मा अनुभूति की कोई भी संभावना के बिना वास्तविक नहीं बनती है, इसलिए अब उस तरफ सतत और संकल्पपूर्ण ध्यान देना है।
मैं बहुत आशा बांध रहा हूं। क्या आप उन्हें पूरा करेंगी?
श्री माणिकलाल जी और मेरे सब प्रियजनों को वहां मेरे प्रणाम कहना।
मैं पत्र की प्रतीक्षा में हूं। कोरे कागज की भी बात हुई थी, वह तो याद होगी न? शेष शुभ। मैं बहुत आनंद में हूं।

रजनीश के प्रणाम
26-10-1964

(प्रतिः सुश्री सोहन बाफना, पूना)

126/ अंसुअन-जल सींचि-सींचि प्रेम-बेलि बोई

प्रिय सोहन,
स्नेह। इतनी ही रात्रि को दो दिन पूर्व तुझे चितौड़ में पीछे छोड़ आया हूं। प्रेम और आनंद से भरी तेरी आंखें स्मरण आ रही हैं। उनमें भर आए पवित्र आंसुओं में सारी प्रार्थना और पूजा का रहस्य छिपा हुआ है।
प्रभु, जिन्हें धन्य करता है, उसके हृदय को प्रेम के आंसुओं से भर देता है। और, उन लोगों के दुर्भाग्य को क्या कहें, जिनके हृदय में प्रेम के आंसुओं की जगह घृणा को काटें हैं?
प्रेम में बहे आंसू परमात्म के चरणों में चढ़ें फूल बन जाते हैं और जिन आंखों से वे बहते हैं, उन आंखों को दिव्य दृष्टि दे जाते हैं।
प्रेम से भरी आंखें ही केवल प्रभु को देख पाने में सफल हो पाती है; क्योंकि प्रेम ही केवल ऐसी ऊर्जा है जो कि प्रकृति की जड़ता को पार कर पाती है और उस तट पहुंचाती है जहां कि परम-चैतन्य का आवास है।
मैं सोचता हूं कि मेरे इस पत्र के पहुंचते माणिक बाबू अवश्य ही तुझे लेकर काशीधाम पहुंच गए होंगे? राह कैसी बीती--पता नहीं। पर आशा करता हूं कि वह हंसते और गीत गाते ही बीती होगी।
यहां अरविंद ने अनिल एंड कंपनी को ट्रेन पर बहुत खोजा, पर वह उनका कोई संधान नहीं पा सका।
वहां सबको मेरे विनम्र प्रणाम कहना! तेरे वायदा किए पत्रों की प्रतीक्षा है। माणिक बाबू को प्रेम।

रजनीश के प्रणाम
9-6-65

(प्रतिः सुश्री सोहन, पूना)

127/ प्रभु के लिए पागल हो

प्रिय आनंद मधु,
प्रेम। समय पक गया है।
अवसर रोज निकट आता जाता है।
अनंत आत्माए विकल हैं।
उनके लिए मार्ग बनाना है।
इसलिए, शीघ्रता करो।
श्रम करो।
स्वयं को विस्मरण करो
प्रभु के लिए पागल होकर काम में लग जाओ।
पागल होने से कम में नहीं चलेगा।
आह! लेकिन, प्रभु के लिए पागल होने से बड़ी कोई प्रज्ञा भी तो नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
26-11-1970

(प्रतिः मा आनंद मधु, विश्वनीड, संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात)

128/ समय न खोओ

प्रिय कृष्ण चैतन्य,
प्रेम। शक्ति को कब तक सोई रहने देना है?
स्वयं के विराट से कब तक अपरिचित रहने की ठानी है?
दुविधा में समय न खोओ।
संशय में अवसर न गंवाओ।
समय फिर लौट कर नहीं आता है।
और, खोए अवसरों के लिए कभी-कभी जन्म-जन्म प्रतीक्षा करनी होती है।

रजनीश के प्रणाम
26-11-1970

(प्रतिः स्वामी कृष्ण चैतन्य, विश्वनीड, संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात)

129/ द्वैत का अतिक्रमण--साक्षीभाव से

प्रिय योग प्रेम।
प्रेम। अस्तित्व है धूप-छांव। आशा-निराशा। सुख-दुख। जन्म-मृत्यु।
अर्थात अस्तित्व है द्वैत। विरोधी ध्रुवों का तनाव। विरोधी स्वरों का संगीत।
लेकिन, उसे ऐसा जानना, पहचानना, अनुभव करना--उसके पार हो जाना है।
यह अतिक्रमण (ैंतंदेबमदकमदबम) ही साधना है।
इस अतिक्रमण को पा लेना सिद्धि है।
इस अतिक्रमण का साधना-सूत्र हैः साक्षीभाव।
कर्ता को विदा करो।
और, साक्षी में जीओ।
नाटक को देखो--नाटक में डूबो मत।
और देखने वाले द्रष्टा में डूबो।
फिर दृश्य में ही रह जाते हैं सुख-दुख, जन्म-मृत्यु।
फिर वे छूते नहीं है--छू नहीं सकते हैं।
उनके तादात्म्य (टकमदजपजल) में ही बस सारी भूल है, सारा अज्ञान है।

रजनीश के प्रणाम
26-11-1970

(प्रतिः मा योग प्रेम, विश्वनीड, संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात)

130/ जो मिले अभिनय उसे पूरा कर

प्रिय योग प्रिया,
प्रेम। संन्यास में संसार अभिनय है।
संसार को अभिनय जानना ही संन्यास है।
फिर न कोई छोटा है, न बड़ा--न कोई राम है, न रावण।
फिर तो जो भी है सब रामलीला है!
जो मिले अभिनय उसे पूरा कर।
वह अभिनय तू नहीं है।
और जब तक भविष्य से हमारा तादात्म्य है, तब तक आत्म-ज्ञान असंभव है।
70

और जिस दिन यह तादात्म्य टूटता है उसी दिन से अज्ञान असंभव हो जाता है।
अभिनय कर और जान कि तू वह नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
26-11-1970

(प्रतिः मा योग प्रिया, विश्वनीड, संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात)

131/ ध्यान है भीतर झांकना

प्रिय योग यशा,
प्रेम। बीज को स्वयं की संभावनाओं का कोई भी पता नहीं होता है, ऐसा ही मनुष्य भी है।
उसे भी पता नहीं है कि वह क्या है--क्या हो सकता है?
लेकिन, बीज शायद स्वयं के भीतर झांक भी नहीं सकता।
पर मनुष्य तो झांक सकता है।
यह झांकना ही ध्यान है।
स्वयं के पूर्ण सत्य को अभी और यहीं किशीश अपव र्छेें जानना ही ध्यान है।
ध्यान में उतर--गहरे और गहरे।
गहराई के दर्पण में संभावनाओं का पूर्ण प्रतिफलन उपलब्ध हो जाता है।
और जो हो सकता है, वह होना शुरू हो जाता है।
जो संभव है, उसकी प्रतीति ही उसे वास्तविक बनाने लगती है।
बीज जैसे ही संभावनाओं के स्वप्नों से आंदोलित होता है, वैसे ही अंकुरित होने लगता है।
शक्ति, समय और संकल्प सभी ध्यान को समर्पित कर दे।
क्योंकि, ध्यान ही वह द्वारहीन द्वार जो कि स्वयं को ही स्वयं से परिचित कराता है।

रजनीश के प्रणाम
26-11-1970

(प्रतिः मा योग यशा, विश्वनीड़, संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात)

132/ समर्पण और साक्षी

मेरे प्रिय,
प्रेम। प्रभु पल-पल परीक्षा लेता है।
हंसो--और परीक्षा दो।
वह परीक्षा योग्य मानता है, यह भी सौभाग्य है।
और जल्दी न करो।
क्योंकि, कुछ मंजिल जल्दी करने से दूर हो जाती हैं।
कम से कम प्रभु का मंदिर तो निश्चय ही ऐसी मंजिल है।
वहां धैर्य चलना ही ज्यादा से ज्यादा तीव्रता से चलना है।
मन डोलेगा--बार-बार डोलेगा।
वही उसका अस्तित्व है।
जिस दिन डोला, उसी दिन उसकी मृत्यु है।
लेकिन, कभी-कभी यह सोता भी है।
उसे ही--निद्रा को ही मन की मृत्यु न समझ लेना।

कभी-कभी वह थकता भी है।
लेकिन, उस थकान को उसकी मृत्यु न समझ लेना।
विश्राम और निद्रा से तो वह सिर्फ स्वयं को पुनः पुनः ताजा भर करता है।
पर उसकी फिकर ही छोड़ो।
उसकी फिकर ही उसे शक्ति देती है।
उसे भी प्रभु समर्पित कर दो।
प्रभु से कहोः बुरा भला जैसा है, अब तुम ही सम्हालो।
और फिर बस साक्षी बने रहो।
बस देखते रहो नाटक।
मन के नाटक को तटस्थ भाव से देखते-देखते ही उस चेतना में प्रवेश हो जाता है जो कि मन नहीं हैं।

रजनीश के प्रणाम
26-11-1970

(प्रतिः स्वामी प्रज्ञानंद सरस्वती, साधना-सदन, कनखल, हरिद्वार)

133/ जो घर बारे आपना

मेरे प्रिय,
प्रेम। प्रेम स्वप्न में भी भेद नहीं करता है।
और वह प्रेम जो कि प्रार्थना भी है, उसमें तो भेद भाव का उपाय ही नहीं है।
मैं तो अब हूं ही कहां?
मैं--बस एक काम चलाऊं शब्द ही रह गया है।
और, इसलिए बहुत जगह उसे अकारण ही बाधा भी पड़ने लगी है।
मैं की बदली हट जाने पर जो पीछे बचा है, वह प्रेम के अतिरिक्त और कुछ
भी नहीं है।
प्रेम--अकारण।
प्रेम--बेशर्त
बस कोई लेने को तैयार भर हो--तो मैं तो बाजार में ही खड़ा हूं।
कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।
जो घर बारै आपना चले हमारे साथ।।

रजनीश के प्रणाम
26-11-1970

(प्रतिः श्री चंद्रकांत एन. पटेल, आसोपालव, बैंक ऑफ बड़ौदा के सामने, रावपुरा, बड़ौदा, गुजरात)

134/ नास्तिकता में और गहरे उतरें

मेरे प्रिय,
प्रेम। नास्तिकता आस्तिकता की पहली सीढ़ी है।
और अनिवार्य।
जिसने नास्तिकता की अग्नि नहीं जानी है, वह आस्तिकता का आलोक भी नहीं जान सकता है।
और, जिसके प्राणों में नहीं कहने की सामर्थ्य नहीं है, उसकी हां सदा
ही निर्वीर्य होती है।

इसलिए, मैं आपके नास्तिकता होने से आनंदित हूं।
ऐसा आनंद केवल उसे ही हो सकता है, जिसने आस्तिकता को जाना है।
बस, इतना ही कहूंगा कि नास्तिकता में और गहरे उतरें।
ऊपर-ऊपर से काम नहीं चलेगा।
सोचें ही नहीं--नास्तिकता को जिए भी।
वैसा जीना ही अंततः आस्तिकता पर ले जाता है।
नास्तिकता निष्कर्ष नहीं है।
सिर्फ संदेह है।
संदेह शुभ है पर अंत नहीं है।
वस्तुतः तो संदेह श्रद्धा की खोज है।
चलें--बढ़ें--यात्रा करें।
संदेह से ही सत्य की यात्रा शुरू होती है।
और, संदेह साधना है।
क्योंकि, अंततः संदेह ही निःसंदिग्ध सत्य का अनावरण करता है।
संदेह के बीज में श्रद्धा का वृक्ष छिपा है।
संदेह को जो बात है श्रम से, वह निश्चय ही श्रद्धा की फसल काटता हैं।
और धर्मों से उचित ही है कि सावधान रहें; क्योंकि उनके अतिरिक्त धर्म
के मार्ग में और कोई बाधा नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
26-11-1970

(प्रतिः श्री भवानीसिंह, ग्राम व पोस्ट--त्राहेल, वाया--अहलीलाल, जि. कांगरा, हिमाचल प्रदेश)

135/ विचारों के पतझड़

मेरे प्रिय,
प्रेम। विचारों के प्रवाह में बहना भर नहीं।
बस जागे रहना।
जानना स्वयं को पृथक और अन्य।
दूर और मात्र द्रष्टा
जैसे राह पर चलते लोगों की भीड़ को देखते हैं, ऐसे ही विचारों को भीड़ को देखना।
जैसे पतझड़ में सूखें पत्तों को चारों ओर उड़ते देखते हैं, वैसे ही विचारों के पत्तों को उड़ते देखना।
न उनके कर्ता बनना।
न उन उनके भोक्ता।
फिर शेष सब अपने आप हो जाएगा।
उस शेष को ही मैं ध्यान (मेडिटेशन) कहता हूं।

रजनीश के प्रणाम
26-11-1970

(प्रतिः श्री लाभशंकर पांडया, पांडया ब्रदर्स, आप्टीशियन, गांधी रोड, अहमदाबाद, गुजरात)

136/ समर्पण--एक अनसोची छलांग

प्रिय सावित्री,

प्रेम। सुरक्षा है ही नहीं कहीं--सिवाय मृत्यु के।
जीवन असुरक्षा का ही दूसरा नाम है।
इस सत्य की पहचान से सुरक्षा की आकांक्षा स्वतः ही विलीन हो जाती है।
असुरक्षा की स्वीकृति ही असुरक्षा से मुक्ति है।
मन में दुविधा रहेगी ही।
क्योंकि, वह मन का स्वभाव है।
उसे मिटाने की फिकर छोड़।
क्योंकि, वह भी दुविधा ही है।
दुविधा को रहने दे--अपनी जगह।
और तू ध्यान में चल।
तू मन नहीं है।
इसलिए, मन से क्या बाधा है? अंधेरे को रहने दे--अपने जगह।
तू तो दिया जला।
समर्पण क्या सोच-सोच कर करेगी?
पागल! समर्पण अनसोची छलांग है।
छलांग लगा या न लगा।
लेकिन कृपा कर सोच विचार मत कर।

रजनीश के प्रणाम
26-11-1970

(प्रतिः डाक्टर सावित्री सी. पटेल, मोहनलाल, डी. प्रसूति-गृह, प्रो. किल्ला पारडी, जिला--बुलसारा, गुजरात)

137/ परमात्मा है--अभी और यहीं

प्यारी जयति,
प्रेम।
परमात्मा दूर है; क्योंकि निकट में हमें देखना नहीं आता है।
अन्यथा, उससे निकट और कोई भी नहीं है।
वह निकटतम ही नहीं--वरन निकटता का ही दूसरा नाम है।
और वह दूसरा नाम भी उनके लिए ही खोजना पड़ा है, जो कि निकट में देख ही नहीं सकते हैं।
शब्द, नाम, सिद्धांत, शास्त्र, धर्म, दर्शन--सब उन्हीं के लिए खोजने पड़े हैं जो कि केवल देर ही देख सकते हैं।
और, इसलिए उनका परमात्मा से कोई भी संबंध नहीं है।
उनका संबंध केवल निकट के प्रति जो अंधे हैं बस उनसे ही है।
इसलिए, मैं कहता हूंः दूर को छोड़ो--आकाश के स्वर्गों को छोड़ो। --भविष्य
के मोक्षों को छोड़ी और देखो निकट को--काल में भी, अवकाश में भी--अभी और यहीं--देखो।
काल के क्षण में देखा।
अवकाश के कण में देखो।
काल के क्षण (ैंपउम-ऊवउमदज) में काल मिट जाता है।
अवकाश के कण (एचंबम एजवउ) में क्षेत्र मिट जाता है।
अभी और यहीं (छवू) में क्षेत्र मिट जाता है।
अभी और यहीं (छवू) में न समय है, न क्षेत्र है।
फिर जो शेष रह जाता है, वही है सत्य--वही है प्रभु--वही है।
फिर जो शेष रह जाता है, वही है सत्य--वही है प्रभु--वही है।
वही तुम भी हो।
तत्वमसि श्वेतकेत

रजनीश के प्रणाम
26-1171970
पुनश्चः डाक्टर को प्रेम। दोनों के पत्र मिल गए हैं। चित्र भी मिल गए।

(प्रतिः सुश्री जयति शुक्ल, द्वारा--डाक्टर हेंमत शुक्ल, काठियावाड, जूनागढ़, गुजरात)

138/ नेति-नेति... की साधना

प्यारी कुसुम,
प्रेम।
सत्य क्या है?
परिभाषा में जो आ जाता है, कम से कम वह नहीं है।
इसलिए, परिभाषाएं छोड़ो।
व्याख्या छोड़ो।
व्याख्याएं मन के खेल हैं।
व्याख्याएं विचार का सृजन हैं।
और जो है वह मन के पार है।
जैसे, लहरें झील की शांति से सदा अपरिचित रहती है; ऐसे ही विचार भी अस्तित्व से कभी परिचित नहीं हो पाते हैं, क्योंकि जब लहरें होती हैं, तब उनके ही कारण झील शांत नहीं होती है और जब झील शांत होती है, तब उसकी शांति के कारण ही लहरें नहीं होती हैं।
फिर, जो है, उसे जानना है।
उसकी व्याख्या उसे जानने से बहुत भिन्न बात है।
लेकिन, व्याख्या धोखा दे सकती है।
खेतों में जैसे धोखे के आदमी खड़े रहते हैं, असली आदमियों के वस्त्र पहन कर; ऐसे ही शब्द सत्यों के धोखे बन जाते हैं।
सत्य के खोजी को शब्दों से सावधान होने की जरूरत है।
शब्द सत्य नहीं हैं।
सत्य शब्द नहीं है।
सत्य है अनुभूति।
सत्य है अस्तित्व।
और उस तक पहुंचने का मार्ग हैः नेति, नेति। (न यह, न वह) व्याख्याओं को काटो।
परिभाषाओं को काटो।
शास्त्रों को काटो।
सिद्धांतों को काटो।
कहोः नेति, नेति। (छवज जीपे, दवज जींज)
फिर स्वर--पर को काटो।
कहाः नेति-नेति।
और तब--निपट शून्य में जो प्रकट होता है, वही सत्य है।
क्योंकि, बस वही है और शेष सब स्वप्न है।
कपिल को प्रेम।
असंग को आशिष।

रजनीश के प्रणाम
26-11-1970

(प्रतिः सुश्री कुसुम, लुधियाना, पंजाब)

139/ स्वयं को पूर्णतया शून्य कर ले

प्रिय मधु,
प्रेम। कम्यून की खबर हृदय को पुलकित करती है।
बीज अंकुरित हो रहा है।
शीघ्र ही असंख्य आत्माएं उसके वृक्ष तले विश्राम पाएंगी।
वे लोग जल्दी ही इकट्ठे होंगे--जिनके लिए कि मैं आया हूं।
और तू उन सब की आतिथेय होने वाली है।
इसलिए, तैयार हो--अर्थात स्वयं को पूर्णतया शून्य कर ले।
क्योंकि, वह शून्यता ही आतिथेय (भवेज) बन सकती है।
और तू उस ओर चल पड़ी है--नाचती, गाती, आनंदमग्न।
जैसे सरिता सागर की ओर जाती है।
और मैं खुश हूं।
सागर निकट है--बस दौड़... और दौड़... और दौड़!

रजनीश के प्रणाम
15-191970

(प्रतिः मा आनंद मधु, संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात)

140/ संघर्ष, संकल्प और संन्यास

प्यारी मधु,
प्रेम। संघर्ष का शुभारंभ है।
और, उसमें तुझे धक्का देकर मैं अत्यंत आनंदित हूं।
संन्यास संसार को चुनौती है।
वह स्वतंत्रता की मौलिक घोषणा है।
पल-पल स्वतंत्रता में जीना ही संन्यास है।
असुरक्षा अब सदा तेरे साथ होगी; लेकिन वही जीवन का सत्य है।
सुरक्षा कहीं है नहीं--सिवाय मृत्यु के।
जीवन सुरक्षा है।
और यही उसकी पुलक है--यही उसका सौंदर्य है।
सुरक्षा की खोल ही आत्मघात है।
वह अपने ही हाथों, जीते जी करना है।
ऐसे मुर्दे चारों ओर है!
उन्होंने ही संसार को मरघट बना दिया है।
उनमें प्रतिष्ठित मुर्दे भी हैं।
इन सबकी जगाना है, हालांकि वे सब जागे हुओं को भी भुलाने की चेष्टा करते हैं।
अब तो यह संघर्ष चलता ही रहेगा।
इसमें ही तेरे संपूर्ण संकल्प का जन्म होगा।
और मैं देख रहा हूं दूर--उस किनारे को जो कि तेरे संघर्ष की मंजिल है।

रजनीश के प्रणाम
25-1970

(प्रतिः मा आनंद मधु, संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात)

141/ स्वयं को जन्म देने की प्रसव-पीड़ा

प्यारे बाबूभाई,
प्रेम। पत्र पाकर आनंदित हूं।
आत्मक्रांति का क्षण निकट है।
उसके पूर्व प्रसव-पीड़ा से भी गुजरना पड़ता है।
स्वयं को जन्म देने से बड़ी कोई पीड़ा नहीं है।
लेकिन, उसके बाद जीवन का परमानंद भी है।
इसलिए, प्यास, प्रार्थना और प्रतीक्षा को ही साधना समझें।
शेष शुभ।
वहां सबको प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
27-3-1970

(प्रतिः बाबूभाई (अब स्वामी कृष्ण चैतन्य), संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात)

142/ अनंत की यात्रा पर निकलो

प्रिय कृष्ण चैन्तय,
प्रेम। तुम्हारे नये जन्म का साक्षी बना कर आनंदित हूं।
तुम्हारे कितने जन्मों का प्रयास था।
लेकिन, नौका ने अब दिशा ले ली है और मैं निश्चिंत हूं।
वचन था मेरा कभी का दिया, वह पुरा कर दिया है।
अब तुम्हें अपना वचन पूरा करना है।
देखना अवसर न खोना।
समय थोड़ा है।
और मेरा दुबारा मिलाना आवश्यक नहीं है।
संकल्प को समग्रता से इकट्ठा कर लो।
पतवार हाथ में लो और अनंत की यात्रा पर निकलो।
तट रहते-रहते कितना काल व्यतीत हो गया है।
हवाएं अनुकूल हैं।
मैं जानता हूं इसीलिए इतने आग्रह से तट से धक्का दिया हूं।
प्रभु कृपा बरस रही है।
खुलोगे और उसे स्वयं में द्वार दो।
नाचो और उसे पीओ।
अमृत के इतने निकट आकर प्यासे तो नहीं रहना है न?

रजनीश के प्रणाम
15-10-1970

(प्रतिः स्वामी कृष्ण चैतन्य, संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात)

143/ शक्ति स्वयं के भीतर है

प्रिय कृष्ण चैतन्य,

प्रेम। तुम्हारा पत्र पाकर आनंदित हूं।
शक्ति है तुम्हारे स्वयं के भीतर।
लेकिन, उसका तुम्हें पता नहीं है।

इसलिए, तुम्हारी ही शक्ति को तुम्हीं को पाने के लिए भी निमित्त की जरूरत पड़ती है।
जिस दिन यह जानोगे उस दिन हंसोगे।
लेकिन तब तक मैं निमित्त का काम करने को राजी हूं।
मैं तो हंसने ही रहा हूं और उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूं; जब कि तुम
भी इस ब्रह्म- श्रर्रीसहींर्शीं में सम्मिलित हो सकोगे।
देखोः कृष्ण हंस रहे हैं, बुद्ध हंस रहे हैं।
सुनोः पृथ्वी हंस रही है, आकाश हंस रहा है।
लेकिन, आदमी रो रहा है।
क्योंकि, उसे पता ही नहीं है कि वह क्या है।
आह! कैसा मजा है? कैसा खेल है?
सम्राट भीख मांग रहा है और मछली सागर में प्यासी है!

रजनीश के प्रणाम
27-10-1970

(प्रतिः स्वामी कृष्ण चैतन्य, संस्कार तीर्थ, आजोल गुजरात)

144/ मिट और जान... खो और पा

प्यारी जसु,
प्रेम। सूर्य को पाने की अभीप्सा, है, तो जरूर ही पा सकेगी।
लेकिन, जलने का साहस चाहिए।
बिना मिटे प्रकाश नहीं मिलता है।
क्योंकि, हमारी अस्मिता ही अंधकार है।
फिर सूर्य बाहर भी तो नहीं है।
भीतर जब सब जलता है, तभी वह जन्मता है।
स्व का जल मिटने का भय।
आलोक है मिटने के लिए छलांग।
मिट और जान।
खो और पा।
इसीलिए तो मैं प्रेम को प्रार्थना कहता हूं।
क्योंकि वह मिटने की प्राथमिक शिक्षा है।
रमा को प्रेम।
सबको प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
11-4-1970

(प्रतिः कुमारी जसु (अब मा योग प्रेम), राजकोट, संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात)

145/ श्वास-श्वास में प्रेम हो

प्रिय योग प्रेम,
प्रेम। तेरा पत्र पाकर आनंदित हूं।
प्रेम ही अब तेरे लिए प्रार्थना है।
प्रेम ही पूजा है।
प्रेम ही परमात्मा है।
श्वास-श्वास में प्रेम हो--बस अब यही तेरी साधना है।

उठते-उठते
सोते-जागते।
बस एक ही स्मरण रखना--प्रेम का।
और फिर तू पाएगी कि प्रभु का मंदिर दूर नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
25-10-1970

(प्रतिः मा योग प्रेम, संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात)

146/ संन्यास जीवन का परम भोग है--

प्रिय योग प्रिया,
प्रेम। तेरे संन्यास से अत्यंत आनंदित हूं।
जिस जीवन में संन्यास के फूल न लगें, वह वृक्ष बांझ है।
क्योंकि, संन्यास ही परम जीवन संगीत है।
संन्यास त्याग नहीं है।
वरन, वही जीवन का परम भोग है।
निश्चय ही जो हीरे-मोती पा लेता है, उसे कंकड़-पत्थर छूट जाते हैं।
लेकिन, वह छोड़ना नहीं, छूटना है।

रजनीश के प्रणाम
15-10-1970

(प्रतिः मा योग प्रिया, संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात)

147/ संन्यास नया जन्म है।

प्रिय योग यशा,
प्रेम। नये जन्म पर मेरे शुभाशीष।
संन्यास नया जन्म है।
स्वयं में, स्वयं से, स्वयं का।
वह मृत्यु भी है।
साधारण नहीं--महामृत्यु।
उस सब की जो तू कल तक थी।
और जो तू अब है, वह भी प्रतिपल मरता रहेगा।
ताकि, नया जन्मे¬नया जन्मता ही रहे।
अब एक पल भी तू तू नहीं रह सकेगी।
मिटना है प्रतिपल और होना है प्रतिपल।
यही है साधना।
नदी की भांति जीना है।
सरोवर की भांति नहीं।
सरोवर गृहस्थ है।
सरिता संन्यासी है।

रजनीश के प्रणाम
11-11-1970

(प्रतिः मा योग यशा, विश्वनीड़, संस्कार तीर्थ, आजोल गुजरात)

148/ संसार में संन्यास का प्रवेश

प्रिय प्रेम कृष्ण,
प्रेम। संन्यास की सुगंध को संसार तक पहुंचाना है।
धर्मों के कारागृहों ने संन्यास के फूल को भी विशाल दीवारों की ओट में कर लिया है।
इसलिए, अब संन्यासी को कहना है कि मैं किसी धर्म का नहीं हूं, क्योंकि समस्त धर्म ही मेरे हैं।
संन्यास को संसार से तोड़ कर भी बड़ी भूल हो गई है।
संसार से टूटा हुआ संन्यास रक्तहीन हो जाता है।
और संन्यास से टूटा हुआ संसार प्राणहीन।
इसलिए, दोनों के बीच पुनः सेतु निर्मित करने हैं।
संन्यास को रक्त देना है, और संसार को आत्मा देनी है।
संन्यास को संसार में लेना है।
अभय और असंग।
संसार में और फिर भी बाहर।
भीड़ में और फिर भी अकेला।
और संसार को भी संन्यास में ले जाना है।
अभय और असंग।
संन्यास में और फिर भी पलायन में नहीं।
संन्यास में और फिर भी संसार में।
तब ही वह स्वर्ण-सेतु निर्मित होगा जो कि दृश्य को अदृश्य से और आकार
को निराकार से जोड़ देता है।
बनो मजदूर इस सेतु के निर्माण में।

रजनीश के प्रणाम
12-11-1970

(प्रतिःस्वामी प्रेम कृष्ण, विश्वनीड़, संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात)

149/ संन्यासी बेटे का गौरव

प्रिय आनंदमूर्ति,
प्रेम। फौलाद के बनो--मिट्टी के होने से अब का नहीं चलेगा।
संन्यासी होना प्रभु के सैनिक होना है।
माता-पिता की सेवा करा।
पहले से भी ज्यादा।
संन्यासी बेटे का आनंद उन्हें दो।
लेकिन, झुकना नहीं।
अपने संकल्प पर दृढ़ रहना।
इसी में परिवार का गौरव है।
जो बेटा संन्यास जैसे संकल्प में समझौता कर ले वह कुल के लिए कलंक है।
मैं आश्वस्त हूं तुम्हारे लिए।
इसीलिए तो तुम्हारे संन्यास का साक्षी बना हूं।
हंसो और सब झेलो।
हंसो और सब सुनो।
यही साधना है।
आंधियां आएंगी और चली जाएगी।

रजनीश के प्रणाम

14-10-1970

(प्रतिः स्वामी आनंदमूर्ति, अहमदाबाद)

150/ संन्यास की आत्मा हैः अडिग, अचल और अभय होना

प्रिय योग समाधि,
प्रेम। संन्यास गौरीशंकर की यात्रा है।
चढ़ाई में कठिनाइयां तो हैं ही।
लेकिन दृढ़ संकल्प के मीठे फल भी हैं।
सब शांति और आनंद में झेलना।
लेकिन संकल्प नहीं छोड़ना।
मां की सेवा करना पहले से भी ज्यादा।
संन्यास दायित्वों से भागने का नाम नहीं है।
परिवार नहीं छोड़ना है, वरन सारे संसार को ही परिवार बनाना है।
मां को भी संन्यास की दिशा में उन्मुख करना।
कहना उनसेः संसार की ओर बहुत देखा अब प्रभु की ओर आंखें उठाओ।
और तेरी और से उन्हें कोई कष्ट न हो, इसका ध्यान रखना।
लेकिन इसका अर्थ झुकना या समझौता करना नहीं है।
संन्यास समझौता जानता ही नहीं है।
अडिग और अचल और अभय--यही संन्यास की आत्मा है।

रजनीश के प्रणाम
15-10-1970

(प्रतिः मा योग, समाधि, राजकोट, गुजरात)